ज्योतिषिका

कुण्डलिनी-योग पर आचार्य श्री रजनीश की नयी अनूठी पुस्तक

'जिन खोजा तिन पाइयाँ'

'जिन खोजा तिन पाइयां' कुण्डलिनी-योग पर आचार्यश्री रजनीश के अद्‌भुत, अनूठे और अद्वितीय १८ प्रवचनों एवं ध्यान-प्रयोगों का संकलन है।

इस संकलन में अधिकतर चर्चाएं प्रायोगिक हैं। जिन्हें पढ़कर साधना की गहराइयों में डुबकी लगाने वाले साधक और भी अधिक गहराइयों में छलांग लगाने के लिए उत्प्रेरित होंगे।

शक्तिपात, प्रभु-प्रसाद (ग्रेस) और सात शरीरों पर इतने वैज्ञानिक ढंग से बात कभी भी प्रकाश में नहीं आयी है।

आचार्यश्री के स्वानुभव एवं अनेक जन्मों के अनंत साधना-प्रयोगों का इनके पीछे आधार है।

आत्म-शरीर, ब्रह्म-शरीर और निर्वाण-शरीर की साधनाओं पर जो कुछ कहा गया है वह तो हिन्दी योग-साहित्य व विश्व-साहित्य के लिए अनूठी और ऐतिहासिक देन सिद्ध होगी।

पृष्ठ ७०० एवं चित्र ४९

मूल्य : २० रुपये

★

एक और नई पुस्तक प्रेस में :

'ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया'

प्राप्तिस्थल : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डॉ. डी. एन. रोड, बम्बई-१

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने)
पहला मजला, रूम नं. ५३
डॉ. दादाभाई नवरोजी रोड,
बम्बई १ फोन : २६४५३०

ज्योति शिखा ग्राहक नं.

प्रिय मित्र,

आप 'ज्योति शिखा' के ग्राहक हैं। आपका चंदा ———— को समाप्त हो गया है। कृपया चंदा रु. एक वर्ष मार्च १९७२ तक का तुरंत भिजवाकर आप अपनी प्रतियां सुरक्षित करवा लें और अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाकर 'ज्योति शिखा' के प्रति अपने प्रेम का परिचय दें।

मंत्री

आचार्यश्री रजनीशजी की समस्त पुस्तकों का सर्वाधिकार जीवन जागृति केन्द्र बम्बई के अन्तर्गत सुरक्षित है। प्रकाशन तथा अनुवाद की सुविधा के लिये बम्बई केन्द्र की लिखित अनुमति नितान्त आवश्यक है।

त था ता

आचार्यश्री रजनीश की युगप्रवर्तक विचारधारा
के प्रचार-प्रसार के लिए
सम्प्रति
'तथाता' ग्रंथमाला का प्रकाशन शुरू हो गया है
बाद में शीघ्र ही
इस 'तथाता' को मासिक-पत्रिका का रूप प्रदान किया जाएगा
संपादक : मा आनंद मधु

'तथाता' ग्रंथमाला का प्रकाशित साहित्य :
- १– अभिनव संन्यास
- २– ध्यान
- ३– प्रेम
- ४– परिवार

प्रत्येक मास की पहली तारीख को प्रकाशित

●

वार्षिक शुल्क : ५ रुपये

सम्पर्क के लिए लिखें :
विश्वनीड़,
संस्कारतीर्थ,
आजोल,
जि. महेसाना
(गुजरात)

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन-दृष्टि
का
मासिक पत्र

यु क्रां द

मानसेवी सम्पादक :
अरविन्द कुमार

एक प्रति : १ रुपया * वार्षिक शुल्क : १२ रुपये

देश के कोने–कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है
सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता :
अरविन्द कुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,
कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन : २९५७

ज्योति शिखा

(आचार्यश्री की अमृतवाणी का संकलन)

मान्यक सम्पादक :
महीपाल
अरविन्द

अंक : २० वां
मार्च
१९७१

प्रकाशन स्थल :
जीवन जागृति केन्द्र
एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के
सामने), पहला माला, रूम नं. ५३,
डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, **बम्बई–१**
फोन : २६४५३०

•

मुद्रण स्थल :
स्टेट्स पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई–१

•

अनुक्रम

विषय	प्रस्तुतकर्ता	पृष्ठ
• इस मायावी को देखा कैसे जाय	महीपाल	५
• कृष्ण की अनासक्ति : बुद्ध की उपेक्षा महावीर की वीतरागता:क्राइस्ट की तटस्थता	मा आनंद मधु	९
• An Eulogy (कविता)	राधेश्याम शर्मा	२१
• अहिंसा	किशोरीरमण टण्डन	२३
• प्रेमी पिपासुओं से	आचार्यश्री	५५
• परमात्मा ही परमात्मा	ब्रह्मदत्त	५८
• होना ही होना (कविता)	महेंद्रप्रसाद जायसवाल	६४
• क्रोध	गुणा बहेन	६५

मुखपृष्ठ सज्जा :
रंगरेखा स्टुडियो

एक प्रति : रु. १.२५
वार्षिक शुल्क : रु. ५.००

इस मायावी को देखा कैसे जाय

★

महीपाल

मेरे बहुत बचपन की बात है, जिसकी स्मृति अब तो धुंधली हो गई है पर रेखाएं सुस्पष्ट हैं—एक दम साफ हैं, चित्र ज्यों का त्यों उभरा हुआ है और जीवन्त है। एक फ़कीर घर के दरवाजे से अक्सर गुज़रा करता था—लंबी दाढ़ी, गरदन से पैरों तक पड़ा लंबा हरा चोगा और

हाथ में मोटा सा डंडा कंधे पर धरा हुआ। ऊँची आवाज़ में दूर से ही पुकारता आया करता था :

एक पैसा लूंगा और सौ गाली दूंगा
खेंच-खेंच के दूंगा और तान-तान के दूंगा
मोटी-मोटी दूंगा और छोटी-छोटी दूंगा
आस औलाद वाले से लूंगा और मालिक के प्यारे से लूंगा—
—एक पैसा लूंगा और सौ गाली दूंगा !

मैं बड़ा कुतूहल भरा कमरे की खिड़की से उसे झांकता, उसके कहे वाक्य सुनता और जब तक वह ओझल न हो जाता नज़र से, उसे देखता रहता। और फिर बड़ी देर तक अपनी उस नादानी में विचार करता रहता—कैसा फ़कीर है? पैसा भी लेता है और ऊपर से गाली भी देता है!

आख़िर हिम्मत जुटा कर एक दिन पैसा लेकर घर की सीढ़ियों पर मैं आ ही गया और आवाज़ लगाई, 'ए बाबा...ये लो पैसा'। उस फकीर ने अपना खप्पर आगे करके पैसा लिया और बोला, 'मालिक बड़ी उमर करे, खुश रहो बेटे, सुखी रहो। दूधों नहाओ पूतों फलो। अल्लाह निगहबान हो...' मैं उसे देखता रहा, देखता रहा और जब वह जाने लगा तो मैंने कहा, 'गाली नहीं दोगे बाबा?' उसने मुड़कर कहा, 'अल्लाह तुझे सलामत रखे, फकीरों की तो यही गालियां हैं, बेटे...!'

समय का कितना बड़ा अन्तराल उस बीच... और इस बीच! जीवन का जाने कितना कुछ बह गया...!

●

अब एक दूसरा फ़कीर मिला— वैसी ही लम्बी दाढ़ी, पर डंडा और चोगा गायब। खुला बदन, नीचे लूंगी – कभी कभी चादर भी ओढ़ लिया करता है। ये अक्सर घर के दरवाज़े से नहीं गुज़रता, इसके दरवाजे से मैं ही अक्सर गुज़रता हूं। ये ऊंची आवाज बेशक नहीं लगाता, पर बोलता खूब है। उस फकीर से गालियां सुनना चाही थीं, पर उसने दी

नहीं। इस फकीर से मीठी बातें सुनने जाता हूं और ये गालियां देता है। पहली ही भेंट में कहता है—क्या जानने आया है, क्या मांगने आया है ...तू भिखारी है? न कुछ मांग, न कुछ चाह, न कुछ जान!

तू जीते जी मर जा, फिर शेष अपने आप हो जायगा, सब मिल जायगा!

मैं तो सन्न रह गया! कैसा फ़कीर है? कहता है कि 'मैं' मरा कि सब मिला। 'मैं' ही मरा तो फिर क्या मिला भी, या न मिला, जानने को कौन बचेगा? मेरे मन पर तो जैसे कोई दरवाज़े पर चोट करता है, उसी भाँति सतत चोट पड़ने लगी... 'मैं मृत्यु सिखाता हूं...मैं मृत्यु सिखाता हूं ...'। मैं तो एकदम घबड़ा गया। जैसे तैसे मैंने थोड़ी हिम्मत जुटाई—थोड़ा आश्वस्त हुआ और अटकते अटकते कहने लगा—स्वामीजी! मैं कुछ मांगने नहीं आया, मैं तो परमात्मा के बारे में आपसे कुछ जानने आया हूं।

'परमात्मा...कैसा परमात्मा?' फकीर गरजा और उसने ऊपर से नीचे तक गौर से मुझे देखा। मुझे तो जैसे काठ ही मार गया।

'कहां से सीख लिया यह शब्द?...कहां पढ़ लिया रे!...' वह बोला, और अपनी भौंहें तान कर अपनी बड़ी बड़ी आँखें सीधी मेरी आँखों में डाल दीं और प्रत्यंचा पूरी खींच कर छोड़ी हो, ऐसा ही उसका वाक्य-बाण छूटा और मेरे आर-पार निकल गया।—'पहले ये बता, अपने को जानता है? कहां से आया है तू, जानता है? कौन है तू—जानता है?'

प्रश्न कलेजा चीर कर रह गये। क्या उत्तर देता मैं?

फकीर का स्वर थोड़ा धीमा हुआ पर दृढ़ता वही थी, वही चमक थी। पूछा, 'कब जन्मा है,रे...अपने जन्म का भी कुछ पता है?'

मुझे तो चक्कर-सा आने लगा।

'तू जन्मा है और तुझे अपने जन्म का पता नहीं; तू मरेगा और तुझे अपनी मौत का भी पता नहीं होगा। सिर्फ लोग कहते हैं तू जन्मा है, तो तू कहता है मैं जन्मा हूं। लोग कहेंगे तू मर गया, तो ही तू कह सकेगा तू मर गया। क्या खूब...! अपना पता नहीं...अपने जन्म का पता नहीं...और परमात्मा का पता करने आया है? तुझे परमात्मा से

कोई मतलब नहीं। कोई लेना-देना नहीं। तुझे अपने से ही कोई मतलब नहीं, तो परमात्मा से क्या मतलब हो सकता है? तू अपने क्रोध को नहीं जानता, अपने प्रेम को नहीं जानता, अपनी अशान्ति को नहीं जानता, अपने तनाव को नहीं जानता, अपनी ही नींद को नहीं जानता, अपने जागरण को नहीं जानता : तू कुछ भी नहीं जानता अपनी बाबत, अपने खुद की बाबत और परमात्मा को जानने आया है!'

मैं जागता था, या सोया था, या बेहोश था मुझे कुछ पता नहीं। एक हाथ ने मेरा माथा स्पर्श किया और मैं झनझना कर सचेत हो गया

फकीर कह रहा था—'जाग...सिर्फ जाग और देख...अपने को देख। अपने को ही पहले जान, पूरी तरह...अपनी असलियत में जान...। उस जानने के बाद भी तुझे परमात्मा की ज़रूरत हो, जानना हो, तो आ जाना मेरे पास—तब बात हो जायगी। पर याद रख, जब तक अन्धा है प्रकाश को जानने के चक्कर में कभी मत पड़ना, वर्ना भटक जायगा, और कुछ भी नहीं जान पायेगा—पहले अपनी आंखों का इलाज करा लेना!!

•

लोग कहते हैं इस फकीर का नाम आचार्य रजनीश है। मुझे तो न आचार्य दिखाई पड़ा, न रजनीश दिखाई पड़ा। देखने का प्रयत्न करता हूं, तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। नहीं देखना चाहता हूं, तो जैसे विराट दिखाई पड़ता है। अँधेरे में उसे देखता हूं, तो प्रकाश ही प्रकाश दिखाई पड़ता है। प्रकाश में देखता हूं, तो आंखें चौंधिया जाती ह और फिर अंधेरा छा जाता है। समझ में नहीं आता इस मायावी को देखा कैसे जाय! तभी उसी की सुझाई एक युक्ति ध्यान में आती है... तू जाग, अपने ही भीतर झांकने का प्रयत्न कर, शायद कुछ बात बन जाय!

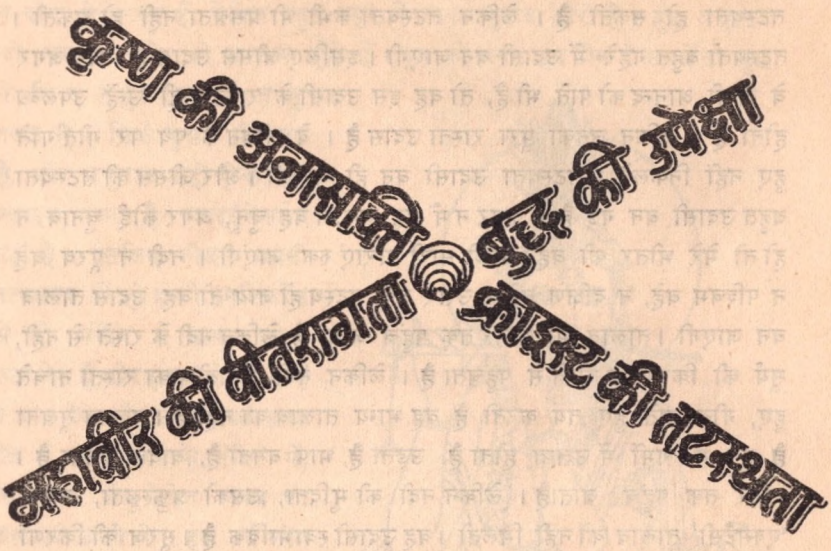

संकलन : मा आनंद मधु

प्रश्न : महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की होली इनडिफरेंस और बुद्ध की उपेक्षा तथा कृष्ण की अनासक्ति में क्या सूक्ष्म समानता है और क्या सूक्ष्म विभिन्नता । इस पर सूक्ष्मता से प्रकाश डालें ।

उत्तर : क्राइस्ट की तटस्थता और बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता और कृष्ण की अनासक्ति, इनमें बहुत सी समानताएं हैं । लेकिन बुनियादी भेद

भी है। समानता अंत पर है, उपलब्धि पर है; भेद मार्ग में है। अंतिम क्षण में ये चारों बातें एक ही जगह पहुंचा देती हैं। लेकिन चारों के रास्ते बड़े अलग अलग हैं। जीसस जिसे तटस्थता कहते हैं, बुद्ध जिसे उपेक्षा कहते हैं, इनमें बड़ी गहरी समानता है। यह जगत जैसा है, इस जगत की धाराएं जैसी हैं, इस जगत के अंतर्द्वन्द्व जैसे हैं, इस जगत में भेद और विरोध जैसे हैं—उनके प्रति कोई तटस्थता हो सकती है। लेकिन तटस्थता कभी भी प्रसन्नता नहीं हो सकती। तटस्थता बहुत गहरे में उदासी बन जाएगी। इसलिए जीसस उदास हैं और अगर वे किसी आनन्द को पाते भी हैं, तो वह इस उदासी के रास्ते से ही उन्हें उपलब्ध होता है। लेकिन उनका पूरा रास्ता उदास है। वे जीवन के पथ पर गीत गाते हुए नहीं निकलते। तटस्थता उदासी बन ही जाएगी। और जीसस की तटस्थता बहुत उदासी बन गई है। अगर न मैं यह चुनूं, न वह चुनूं, अगर कोई चुनाव न हो तो मेरे भीतर की बहने वाली सारी धाराएं रुक जाएंगी। नदी न पूरब बहे न पश्चिम बहे, न दक्षिण बहे न उत्तर बहे, तटस्थ हो जाय तो वह उदास तालाब बन जाएगी। तालाब भी सागर तक पहुंच जाता है लेकिन नदी के रास्ते से नहीं, सूर्य की किरणों के रास्ते से पहुंचता है। लेकिन नदी, जो बीच का रास्ता नाचते हुए, गीत गाते हुए तय करती है वह भाग्य तालाब का नहीं है। तालाब सूखता है धूप में, गर्मी में उत्तप्त होता है, उड़ता है, भाप बनता है, बादल बनता है। सागर तक पहुंच जाताहै। लेकिन नदी की मुदिता, उसकी प्रफुल्लता, उसकी 'एक्सटैसी' तालाब को नहीं मिलती। वह उदासी स्वाभाविक है। सूरज की किरणों में तपना और भाप बनना उदासी हो सकती है। तालाब नाचता हुआ बादलों पर नहीं चढ़ता; नदी नाचती हुई सागर में उतर जाती है। और तालाब सीधा भी सागर तक नहीं पहुंचता। बीच में भाप बनता है, फिर पहुंचता है। तो जीसस एक उदास बादल की तरह हैं जो आकाश में मंडराता है और सागर की यात्रा करता है। नाचती हुई नदी की तरह नहीं हैं।

बुद्ध और जीसस की जीवन-व्यवस्था में थोड़ी निकटता है, लेकिन एकदम निकटता नहीं है। क्योंकि बुद्ध और तरह के व्यक्ति हैं। जहां जीसस की तटस्थता जीसस को उदास कर जाती है वहा बुद्ध की उपेक्षा बुद्ध को सिर्फ शांत कर जाती है, उदास नहीं। इतना फर्क है। बुद्ध की उपेक्षा सिर्फ शांत कर जाती है। न वहां उदासी है जीसस जैसी, न वहां कृष्ण जैसा नाचता हुआ गीत है, न महावीर जैसा झरता हुआ अप्रगट सुख और आनन्द है। बुद्ध शांत हैं, तटस्थ नहीं हैं वे। तटस्थता तो उदासी ले ही आएगी। वे सिर्फ तटस्थ नहीं हैं, वे उपेक्षा

को उपलब्ध हैं। पाया है कि यह भी व्यर्थ है, पाया है कि वह भी व्यर्थ है। इसलिए उत्तेजित होने का उन्हें कोई उपाय नहीं रहा है। उन्हें कोई भी आल्टरनेटिव, कोई भी विकल्प उत्तेजित नहीं कर पाता। सब विकल्प समान हो गए हैं। जीसस के लिए तटस्थता है। विकल्प समान हैं, पर जीसस अभी भी कहेंगे, यह ठीक है और वह गलत है। यह करो और वह मत करो। यद्यपि वे दोनों से तटस्थ हैं, लेकिन बहुत गहरे में उनका चुनाव जारी है। बुद्ध अचुनाव को, च्वाइसलेसनेस को उपलब्ध होते हैं। बुद्ध को अगर हम ठीक से समझें तो बुद्ध के लिए न कुछ सही है न कुछ गलत है। सिर्फ चुनाव ही गलत है, और अचुनाव सही होना है। च्वाइस गलत है च्वाइसलेसनेस सही है। इसलिए जीसस अपनी तटस्थता में ही होली इनडिफरेंस में भी मंदिर में जाकर कोड़ा उठा लेते हैं और सूदखोरों को कोड़े से पीट देते हैं, उनके तख्त उलट देते हैं। यहूदियों के मंदिर में, सिनागाग में पुरोहित ब्याज का काम भी करते थे। हर वर्ष लोग इकट्ठे होते थे मेले पर, और तब वे उन्हें उधार देते थे और सूद लेते थे। वे सूद की दरें इतनी बढ़ गई थीं कि लोग अपना मूल तो कभी चुका ही नहीं पाते थे, ब्याज भी नहीं चुका पाते थे। और जिंदगी भर मेहनत करके बस इतना ही काम करते थे कि वह हर वर्ष आकर पुरोहितों को उनके ब्याज का पैसा चुका जाएं। पूरे मुल्क का धन सिनागाग में इकट्ठा होने लगा। तो जीसस कोड़ा उठा लेते हैं, तख्ते उलट देते हैं सूदखोरों के। जीसस इनडिफरेंट, तटस्थ हैं लेकिन चुनाव जारी है। वे कहते हैं कि इस जगत के प्रति एक तटस्थता चाहिए। लेकिन इस जगत में अगर गलत हो रहा है, तो जीसस चुनाव करते हैं। लेकिन बुद्ध को हम हाथ में कोड़ा उठाए हुए नहीं सोच सकते। उनका कोई चुनाव नहीं है, उनका कोई चुनाव ही नहीं है। अचुनाव के कारण वे गहरी साइलेंस में, गहरी शांति को

भगवान कृष्ण

भगवान बुद्ध

उपलब्ध हुए हैं। इसलिए बुद्ध को समझते वक्त शांति सबसे महत्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध की प्रतिमा से जो भाव प्रगट होता है और झरता है चारों तरफ वह शांति का है। कहना चाहिए शांति, मूर्तिमंत बुद्ध में हुई है। कोई उत्तेजना नहीं है। तालाब की उत्तेजना भी नहीं है। तालाब भी कम से कम धूप की किरणों में भाप बनता है और आकाश की तरफ उड़ता है। बुद्ध इतने शांत हैं कि वे कहते हैं कि मैं सागर की तरफ जाने की भी उत्तेजना नहीं लेता। सागर को आना हो तो आ जाय। वे इतनी भी यात्रा करने की तैयारी में नहीं हैं। उतनी यात्रा भी तनाव है। इसलिए बुद्ध ने सागरवाची जितने भी प्रश्न हैं सबको इंकार कर दिया। कोई पूछे ईश्वर है, कोई पूछे ब्रह्म है, कोई पूछे मोक्ष है, कोई पूछे आत्मा का मरने के बाद क्या होता है? इस तरह के जितने भी प्रश्न हैं बुद्ध उनको हंस के टाल देते हैं। वे कहते हैं यह पूछो ही मत। क्योंकि अगर कुछ भी है तो उस तक की यात्रा पैदा होती है और यात्रा अशांति बन जाती है। वे कहते हैं—मैं जहां हूं वहीं हूं। मुझे कोई यात्रा नहीं करनी है, मुझको कोई तनाव नहीं करना है। इसलिए अगर बुद्ध की उपेक्षा बहुत गहरे में देखें तो सिर्फ संसार की उपेक्षा नहीं है। जीसस की उपेक्षा सिर्फ संसार की उपेक्षा है लेकिन परमात्मा का चुनाव जारी है। बुद्ध की उपेक्षा परमात्मा की भी उपेक्षा है। वे कहते हैं, परमात्मा को भी पाना है तो यह भी तो मन की डिजायर, तृष्णा और ईर्ष्या है। आखिर नदी क्यों सागर को पाना चाहे; और नदी सागर को पाकर भी क्या पा लेगी? अगर सागर में ज्यादा जल है तो मात्रा का ही फर्क पड़ता है। नदी में भी जल है और सागर के जल में और नदी के जल में फर्क क्या है! बुद्ध कहते हैं, हम जो हैं—हैं; और वहीं शांत हैं। इसलिए बुद्ध की उपेक्षा यात्राविहीन है। बुद्ध के चेहरे पर, बुद्ध की आंखों में यात्रा नहीं देखी जा सकती है। वे स्थिर हैं, ठहर गये हैं, वहीं हैं, जैसे कोई ताल बिल्कुल शांत हो। न नदी की तरह भागता हो, न आकाश की तरफ

उड़ता हो, बिल्कुल शांत हो। एक लहर भी न उठती हो, एक रिपल भी पैदा न होती हो। ऐसे बुद्ध का होना है।

स्वभावतः बुद्ध की शांति निगेटिव होगी, नकारात्मक होगी। उसमें कृष्ण का प्रगट आनंद नहीं हो सकता, उसमें महावीर का अप्रगट आनंद भी नहीं हो सकता। लेकिन जो इतना शांत होगा कि जिसे सागर तक पहुंचने की इच्छा भी नहीं है, क्या वह अंततः आनंद को उपलब्ध नहीं हो जायगा ? हो जायगा। लेकिन वह बुद्ध की भीतरी दशा होगी। उनके अंतरतम में वह आनंद का दिया जलेगा, लेकिन बाहर उनकी सारी की सारी आभा, उनका जो प्रभामंडल है, वह शांति का होगा। दिये की गहरी ज्योति जहां होगी वहां तो आनंद होगा लेकिन उसका प्रभामंडल सिर्फ शांति का होगा। बुद्ध से हिलते डुलते सोचना भी

भगवान महावीर

कठिन मालूम पड़ता है। बुद्ध की कोई चिंतना करे, सोचे तो ऐसा भी नहीं लगता कि यह आदमी उठकर चला भी होगा। उनकी प्रतिमा देखें तो ऐसी लगती है जैसे यह आदमी सदा बैठा ही रहा हो। यह उठा भी होगा, हिला भी होगा, डुला भी होगा, इसने पैर भी उठाया होगा, इसने ओठ ही खोला होगा, यह बोला भी होगा ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। बुद्ध की प्रतिमा 'जस्ट स्टिलनेस' की प्रतिमा है जहां सब चीजें ठहर गई हैं, जहां कोई मूवमेंट नहीं है, किसी तरह की कोई गति नहीं है। तो बुद्ध की

परमात्मा-पुत्र क्राइस्ट

आभा जो है वह शान्ति की है। फिर बुद्ध की उपेक्षा समस्त तनावों की उपेक्षा है। चाहे वे तनाव मोक्ष के ही क्यों न हों। कोई आदमी मोक्ष ही क्यों न पाना चाहे, बुद्ध कहेंगे, कि पागल हो! कहीं मोक्ष है? कोई कहे आत्मा को पाना है, तो बुद्ध कहेंगे, कि पागल हो! कहीं आत्मा है? असल में जबतक पाना है तबतक बुद्ध कहेंगे, तुम पा न सकोगे। तुम उस जगह खड़े हो जाओ जहां पाना ही नहीं है। तब तुम पा लोगे। लेकिन यह बात वे कभी साफ कहते नहीं हैं। क्योंकि अगर वे इतना भी कहें कि तब तुम पा लोगे, तो हम तत्काल पाने को दौड़ पड़ेंगे। तो बुद्ध सिर्फ निषेध करते जाते हैं। वे कहते हैं न परमात्मा है, न आत्मा है, न मोक्ष है, कोई भी नहीं है। है ही नहीं कुछ। क्योंकि जबतक कुछ है तबतक तुम पाना चाहोगे। और जबतक तुम पाना चाहोगे तबतक तुम न पा सकोगे। क्योंकि जो भी पाना है वह ठहर के, रुक के, मौन में, थिरता में, शून्य में पाना है। और तुम्हारी चाह, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें दौड़ाती रहेगी। तृष्णा मूल है बुद्ध के लिए, और उपेक्षा सूत्र है तृष्णा से मुक्ति का। चुनो ही मत, पूछो ही मत कि कहीं जाना है। मंजिल बनाओ ही मत, मंजिल नहीं है कोई।

जीसस के लिए मंजिल है। इसलिए जगत के प्रति वे एक होली इनडिफरेंस, पवित्र तटस्थता की बात करते हैं। लेकिन परमात्मा के प्रति उनकी इनडिफरेंस नहीं हो सकती। अगर वैसा कोई इनडिफरेंस आदमी है तो वह अनहोली इनडिफरेंस होगी। वह पवित्र तटस्थता न होगी। उनकी पवित्र तटस्थता संसार के प्रति है। अगर हम जीसस से पूछें कि बुद्ध तो कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। कैसा परमात्मा? कोई आत्मा नहीं। है कैसी आत्मा? न कुछ पाने को है, न कोई पानेवाला है। इसलिए बुद्ध जो बात करते हैं वह बहुत अद्भुत है। अगर उनसे पूछो कि कोई भी नहीं है, तो वे कहते हैं यह जो हमें दिखाई पड़ रहा है सिर्फ संघटन है, सिर्फ संघात है, सिर्फ एक कम्पोजीशन है। जैसे रथ है—उसका चाक अलग कर लें, घोड़े अलग कर लें, बल्ली अलग कर लें तो फिर रथ पीछे नहीं बचता। रथ सिर्फ एक जोड़ है। ऐसे ही तुम भी एक जोड़ हो। यह सारा जगत एक जोड़ है। चीजें टूट जाती हैं पीछे कुछ भी नहीं बचता। न कोई आत्मा, न कोई परमात्मा। और यही पाने योग्य है। लेकिन यह सदा बुद्ध भीतर कहते हैं। यह कभी बाहर नहीं कहते। इसलिए जो बहुत गहरे समझ सकते हैं वही समझ पाते हैं; अन्यथा बुद्ध के पास से तृष्णालु व्यक्ति सभी लौट जाते हैं। जिसको कुछ भी पाना है वह कहते हैं यह आदमी व्यर्थ है। इसके पास पाने को कुछ भी नहीं है। शांत होने को हम नहीं आए हैं, हम

कुछ पाने को आये हैं। और बुद्ध उनपर हंसते हैं। क्योंकि वे कहते हैं शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो परमात्मा है, शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो आत्मा है, उसे शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो मोक्ष है, तुम उसको लक्ष्य मत बनाओ। तुम अगर मुझसे पूछोगे मोक्ष है? और मैं कहूं—है, तो तुम तत्काल लक्ष्य बना लोगे। और लक्ष्य की तरफ दौड़ता आदमी कभी शान्त नहीं होता है। इसलिए बुद्ध की अपनी तकलीफ है। उनकी उपेक्षा शान्ति को ले जाती है—इतनी गहरी शान्ति में जहां कोई यात्रा ही नहीं है।

महावीर की वीतरागता, बुद्ध की शान्ति से मेल खाती है थोड़ी दूर तक। क्योंकि इस जगत में वे भी उपेक्षा के पक्ष में हैं। और थोड़ी दूर तक महावीर की वीतरागता जीसस से मेल खाती है। क्योंकि उस जगत में मोक्ष के प्रति उनका चुनाव है। महावीर मोक्ष के प्रति अचुनाव में नहीं हैं। क्योंकि महावीर कहेंगे, अगर मोक्ष भी नहीं है तो फिर शांति होने का प्रयोजन भी क्या है? फिर अशांत होने में हर्जा भी क्या है? अगर कुछ पाने को ही नहीं है तो फिर चुप और मौन बैठने का प्रयोजन भी क्या है? महावीर कहेंगे कि सब छोड़ा जाय, तो कुछ पाने को है; और जो पाने को है उसी के लिए सब छोड़ा जा सकता है। इसलिए मोक्ष के प्रति महावीर की उपेक्षा नहीं है। वीतरागता उनकी, इस जगत का जो द्वन्द्व है, उसके पार ले जाने वाली है। निर्द्वन्द्व की उपलब्धि का मार्ग है। लेकिन महावीर की वीतरागता किसी उपलब्धि का मार्ग है, बुद्ध की उपेक्षा अनुपलब्धि का द्वार है जहां सब शून्य हो जायगा और सब खो जायगा। बुद्ध का संन्यास एक अर्थ में पूर्ण है। उसमें परमात्मा की भी मांग नहीं है। महावीर के संन्यास में मोक्ष की जगह है। महावीर यह कहते हैं कि संन्यास संभव ही नहीं है, अगर मोक्ष नहीं है; तो फिर सब किस लिए? क्योंकि महावीर का चिंतन बड़ा वैज्ञानिक और कॉजल है। महावीर कहते हैं कॉजलिटी के बिना, कार्य-कारण बिना कुछ होता ही नहीं। इसलिए वे बुद्ध से राजी नहीं होंगे कि हम सिर्फ शांत हो जायं बिना किसी वजह के। महावीर कहते हैं, अशांत होने की भी वजह होती हैं और शांत होने की भी वजह होती है। वे कृष्ण से भी राजी न होंगे इस बात के लिए कि हम सब कुछ स्वीकार कर लें। क्योंकि महावीर कहते हैं, अगर हम सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं तो हम आत्मवान ही नहीं रह जाते हैं, हम तो पदार्थ की तरह हो जाते हैं। आत्मा के होने का अर्थ यह है कि डिस-क्रिमिनेशन। महावीर कहते हैं, आत्मवान होने का अर्थ है विवेक – यह ठीक है, और यह गलत है, इस बात का विवेक ही आत्मवान होने का अर्थ है। और जो

गलत है उसे छोड़ते जाना है। राग भी गलत है और विराग भी गलत है, इसलिए दोनों को छोड़ देना है और वीतरागता को पकड़ लेना है। महावीर के लिए वीतरागता उपलब्धि है, और वीतरागता से मोक्ष है। तो महावीर सिर्फ शांत ही नहीं हैं– शांत तो हैं ही, लेकिन आनंदित भी हैं। मोक्ष की उपलब्धि की किरणें उनके भीतर ही नहीं फैलतीं, उनके शरीर से चारों ओर नाचने लगती हैं। इसलिए अगर महावीर और बुद्ध को साथ साथ खड़ा करें तो बुद्ध बिल्कुल पैसिव साइलेंस में हैं, जैसे हों ही नहीं। महावीर ऐक्टिव साइलेंस में हैं, बहुत होके हैं। बहुत मजबूती से हैं। हां, उनके होने में चारों तरफ आनंद की प्रखरता है। लेकिन अगर कृष्ण के पास महावीर को खड़ा करें तो महावीर का आनंद भी साइलेंट मालूम पड़ेगा, शांत मालूम पड़ेगा, और कृष्ण का आनंद आंदोलित मालूम पड़ेगा। कृष्ण नाच सकते हैं, महावीर नाच नहीं सकते। अगर महावीर के नाच को देखना है तो उनकी शांति, मौन, उनकी थिरता में ही देखना होगा। वह दिखायी पड़ सकता है उनके रोयें रोयें से, उनकी सांस सांस से, उनकी आंखों के हिलने-डुलने से, उनके चलने से। सब तरफ से उनका आनंद दिखायी पड़ेगा; लेकिन वे नाच नहीं सकते। यह नाच देखना पड़ेगा। यह इनडाइरेक्ट है, यह परोक्ष है। तो महावीर की वीतरागता प्रगट रूप से आनंद को घोषित करती है। इसलिए महावीर की प्रतिमा और बुद्ध की प्रतिमा में वही फर्क है। महावीर की प्रतिमा में आनंद प्रगट होता मालूम पड़ेगा। बुद्ध एकदम भीतर चले गये हैं उनके बाहर कुछ जाता हुआ मालूम नहीं पड़ता। वह बिल्कुल ऐसे हो गये हैं जैसे 'न हों'। महावीर ऐसे हो गये हैं जैसे 'हों'। महावीर स्वयं हो गये हैं, जैसे पूरी तरह हैं। उनके अस्तित्व की घोषणा समग्र है, इसलिए महावीर ईश्वर को इन्कार कर देते हैं लेकिन आत्मा को इन्कार नहीं कर पाते। महावीर कह देते हैं कोई परमात्मा नहीं है–हो भी कैसे सकता है? मैं ही परमात्मा हूं। इसलिए महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा है। तुम सब परमात्मा हो, कोई और अलग परमात्मा नहीं है। यह घोषणा उनकी प्रगाढ़ आनंद की एक्सटेसी से निकलती है। हर्षोन्माद में वे यह घोषणा करते हैं कि मैं ही परमात्मा हूं। कोई और ऊपर परमात्मा नहीं है। क्योंकि महावीर कहते हैं, अगर मुझसे ऊपर कोई भी परमात्मा है तो फिर मै कभी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो पाऊंगा। स्वतंत्रता की फिर कोई संभावना न रही। कोई एक परमात्मा ऊपर बैठा ही है। अगर मेरे ऊपर कोई एक नियंता है, जिसके कानून से जगत चलता है, तो मेरी मुक्ति का क्या अर्थ है? कल अगर वह सोच ले कि वापस

भेज दो इस मुक्त आदमी को संसार में, तो मैं क्या कर सकूंगा ? इसलिए महावीर कहते हैं – स्वतंत्रता की गारंटी सिर्फ इसमें है कि परमात्मा न हो। परमात्मा और स्वतंत्रता दोनों साथ साथ नहीं चल सकते हैं। इसलिए परमात्मा को इंकार कर देते हैं; लेकिन आत्मा को बड़ी प्रगाढ़ता से घोषित करते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। इसलिए महावीर में प्रगट आनन्द दिखाई पड़ता है। वह उनकी वीतरागता है। वीतरागता में वे बुद्ध से सहमत हैं अचुनाव के लिए। राग और विराग में चुनाव नहीं करना है लेकिन संसार और मोक्ष में चुनाव नहीं करना है इस बात में वे बुद्ध से राजी नहीं हैं। वे कहते हैं––संसार और मोक्ष में तो चुनाव करना ही है। इस मामले में वे जीसस से राजी हैं। इस मामले में जीसस की तटस्थता उनके करीब आती है। लेकिन जीसस का परमात्मा परलोक में है और मरने के बाद ही जीसस प्रसन्न हो सकते हैं, जब परमात्मा से मिल जायं। महावीर का कोई परमात्मा परलोक में नहीं है। महावीर का परमात्मा भीतर है और वह यहीं पाकर प्रसन्न हैं। इसलिए जीसस उदास हैं और महावीर उदास नहीं हैं।

कृष्ण की अनासक्ति का भी तीनों से कुछ तालमेल है और कुछ बुनियादी भेद भी है। कृष्ण को अगर हम इन तीनों का इकट्ठा जोड़ और कुछ ज्यादा कहें तो कठिनाई नहीं है। कृष्ण की अनासक्ति उपेक्षा नहीं है। कृष्ण कहते हैं––जिसके प्रति उपेक्षा हो गई उसके प्रति हम अनासक्त नहीं हो सकते। क्योंकि उपेक्षा भी विपरीत आ सकती है। रास्ते से मैं गुजरा और मैंने आपकी तरफ देखा ही नहीं। देखने में भी एक आसक्ति है, न देखने में भी एक आसक्ति है। सिर्फ विपरीत आसक्ति है, कि नहीं देखूंगा। और फिर कृष्ण कहते हैं––उपेक्षा किसके प्रति ? क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जिसके प्रति भी उपेक्षा हुई, वह परमात्मा ही है। यह जगत पूरा का पूरा ही अगर परमात्मा है, तो उपेक्षा किसके प्रति ? और उपेक्षा करेगा कौन ? और जो उपेक्षा करेगा वह अहंकार से मुक्त कैसे होगा ? उपेक्षा करेगा कौन ? मैं करूंगा उपेक्षा ? बुरे की उपेक्षा करूंगा अच्छे के लिए, संसार की उपेक्षा करूंगा मोक्ष के लिए ! करेगा कौन ? और करेगा किसकी ? इसलिए उपेक्षा जैसे नकारात्मक और कंडेमनेटरी, निंदात्मक शब्द का उपयोग कृष्ण नहीं कर सकते। तटस्थता का भी उपयोग वे नहीं कर सकते। क्योंकि कृष्ण कहेंगे परमात्मा खुद भी तटस्थ नहीं है, तो हम कैसे तटस्थ हो सकते हैं ? तटस्थ हुआ नहीं जा सकता। कृष्ण कहते हैं––हम सदा धारा में हैं, तट पर हो नहीं सकते। जीवन एक धारा है। जीवन का कोई तट है ही

नहीं जिसपर हम खड़े हो जांय, और तटस्थ हो जायं, और हम कह दें कि हम धारा के बाहर हैं। हम जहां भी हैं धारा के भीतर हैं; हम जहां भी हैं जीवन में हैं; हम जहां भी हैं अस्तित्व में हैं। तट पर हम खड़े हो नहीं सकते। होना ही, अस्तित्व ही—धारा है। इसलिए तटस्थ हम होंगे कैसे ? हां, नदी के किनारे हम तट पर खड़े हो जाते हैं। नदी बहती जाती है। हम तट पर खड़े रहते हैं। लेकिन जीवन की ऐसी कोई नदी नहीं है जिसके किनारे हम खड़े हो जायं। जीवन की नदी का कोई किनारा ही नहीं है, तो तटस्थता शब्द का प्रयोग वे नहीं कर सकते। उपेक्षा शब्द का वे प्रयोग नहीं कर सकते। वीतराग शब्द का वे इसलिए प्रयोग नहीं कर सकते; क्योंकि वे यह कहते हैं कि अगर राग बुरा है, अगर विराग बुरा है तो है ही क्यों ? बुरे का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है ? या तो हम ऐसा मानें कि जगत में दो शक्तियां हैं। एक शुभ की, परमात्मा की शक्ति है। एक अशुभ की, शैतान की शक्ति है। जैसा कि जरथुस्त्र मानते हैं, जैसा कि ईसाई मानते हैं, जैसा कि मुसलमान मानते हैं। उन सबकी तकलीफ यही है कि अगर जगत में अशुभ है तो फिर अशुभ की शक्ति हमें अलग करनी पड़ेगी परमात्मा से। अन्यथा परमात्मा फिर अशुभ का भी स्रोत है। वह जरथुस्त्र नहीं सोच पाए, मोहम्मद नहीं सोच पाये। जीसस भी राजी नहीं हैं। इसलिए शैतान, डैविल, अशुभ के लिये हमें कोई जगह बनानी पड़ती है। कृष्ण यह कहते हैं कि अगर अशुभ भी है, अलग भी है, तो भी क्या वह परमात्मा की आज्ञा से है, या परमात्मा की आज्ञा के बिना है ? उसके होने में भी परमात्मा के सहारे की जरूरत है, या वह स्वतंत्र रूप से है ? तो वह ठीक परमात्मा के समतुल शक्ति हो गयी। फिर इस जगत में शुभ कभी भी फलित नहीं हो सकता। फिर वह हारेगा भी क्यों ? हारने की जरूरत भी क्या है ? फिर इस जगत में दो परमात्मा होंगे। और इस जगत में दो परमात्मा की कल्पना असंभव है। इसलिए कृष्ण कहते हैं—शक्ति एक है और उसी शक्ति से सब उठता है। जिस शक्ति से स्वस्थ फल लगता है वृक्ष में, उसी शक्ति से सड़ा हुआ फल भी लगता है। उसके लिए किसी अलग शक्ति के होने की जरूरत नहीं है। और जिस चित्त से बुराई पैदा होती है उसी चित्त से भलाई पैदा होती है। उसके लिए अलग शक्ति की जरूरत नहीं है। शुभ और अशुभ एक ही शक्ति के रूपांतरण हैं। अंधकार और प्रकाश एक ही शक्ति के रूपांतरण हैं। इसलिए कृष्ण यह कहते हैं कि मैं दोनों को छोड़ने को नहीं कहता। दोनों को उनकी समग्रता में जीने को कहता हूं।

अनासक्ति का अर्थ, एक के पक्ष में दूसरे की आसक्ति नहीं, शुभ के पक्ष में

अशुभ की आसक्ति नहीं। आसक्ति ही नहीं, चुनाव ही नहीं और जीवन जैसा है वह समग्र जीवन की पूर्ण स्वीकृति और इस समग्र जीवन के प्रति स्वयं का पूर्ण समापन, पूर्ण समर्पण। 'आसक्ति' का अर्थ यह है कि मैं अलग हूं ही नहीं, एक ही हूं इस जगत से। कौन चुने, किसको चुने? जगत जैसा करवा रहा है वैसा मैं लहर की तरह सागर में बहा जा रहा हूं। मैं अलग हूं ही नहीं। इसमें कुछ समानताएं मिलेंगी। कृष्ण, बुद्ध जैसी शांति को उपलब्ध हो जायेंगे, क्योंकि कुछ उन्हें पाना नहीं है। जो भी है, वह पाया हुआ है। वे महावीर जैसे वीतराग दिखायी पड़ेंगे किन्हीं क्षणों में, क्योंकि उनके आनंद का कोई पारावार नहीं है। वे जीसस जैसे परमात्मा की घोषणा करते दिखायी पड़ेंगे, इसलिए नहीं कि इस लोक में और ऊपर के लोक में परमात्मा कहीं बैठा है, बल्कि सब कुछ परमात्मा ही है। कृष्ण की अनासक्ति समग्र समर्पण है, मैं का 'न' हो जाना है, मैं हूं ही नहीं यह जानना है। इसके जान लेने के बाद, जो हो रहा है वह हो रहा है! इसमें कोई उपाय ही नहीं है। इसमें हम कुछ कर सकते हैं ऐसा है ही नहीं। इसमें हमारे द्वारा कुछ हो सकता है इसकी कोई संभावना ही नहीं है। कृष्ण अपने को एक लहर की तरह सागर में देखते हैं। कोई चुनाव नहीं करना है, इसलिए कोई आसक्ति नहीं है। अनासक्ति की यह स्थिति अगर ठीक से हम समझें तो स्थिति नहीं है, स्टेट्स आफ माइंड नहीं है, यह समस्त स्टेट्स आफ माइंड को छोड़ देना है। समस्त स्थितियों को छोड़ देना है और अस्तित्व के साथ एक हो जाना है। इस में कृष्ण वहीं पहुंच जाते हैं जहां अपनी अपनी संकरी गलियों से महावीर पहुंच जाते हैं, जीसस पहुंच जाते हैं, बुद्ध पहुंच जाते हैं। लेकिन उनके चुनाव पगडंडियों के हैं। कृष्ण का चुनाव राजपथ का है। पगडंडियोंवाला भी पहुंच जाता है। पगडंडियों की सुविधाएं भी हैं, असुविधाएं भी हैं। राजपथ की सुविधाएं हैं, असुविधाएं भी हैं।

व्यक्तिगत चुनाव है। कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर ही चलना पसंद करेंगे। उन्हें चलने का मजा ही तब आयेगा जब पगडंडी होगी, जब वे अकेले होंगे, जब न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा। जब भीड़ के धक्के न होंगे, और जब प्रतिपल उन्हें रास्ते खोजने पड़ेंगे घने जंगल में, तभी उनकी चेतना को चुनौती होगी। वह पगडंडियों को खोजकर ही पहुंचेंगे। कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर चलना बिल्कुल आनंदपूर्ण न पायेंगे। अकेला होना उन्हें भारी पड़ जायगा। सबके साथ होना ही उनका होना है, सबके साथ ही उनका आनंद है। आनंद उनके लिए सह-जीवन, सहयोग में, साथ में है, संग में है। राजपथ पर चलेंगे।

निश्चित ही, पगडंडियों पर चलने वाले उदास चित्त ही चल सकते हैं। राजपथ पर चलनेवाले उदासी से चलेंगे तो पगडंडियों पर धक्का दे दिये जायेंगे। राजपथ पर, जहां लाखों लोग चलेंगे, वहां नाचते हुए ही चला जा सकता है, वहां गीत गाते हुए ही चला जा सकता है। पगडंडियों पर चलनेवाले शांति से चल सकते हैं, राजपथ पर चलनेवालों पर अशांति के बादल भी आते रहेंगे। उनको उसके लिए भी राजी होना पड़ेगा। यही उनकी शांति होगी। पगडंडी पर चलनेवाले अपनी निपट निजता के आनंद में तल्लीन हो सकते हैं। राजपथ पर चलनेवालों को दूसरों के सुख-दुख में भागीदार भी होना पड़ेगा। यह सब भेद होंगे। लेकिन कृष्ण, जैसा मैंने कहा, मल्टी डाइमेंशनल हैं। उनका चुनाव राजपथ का है। और ठीक से अगर हम समझें तो परमात्मा तक पहुंचने का कोई एक मार्ग नहीं बन सकता है कि वह परमात्मा तक पहुंचा दे। परमात्मा तक पहुंचने के लिए कोई बना हुआ मार्ग नहीं है। सब अपनी तरह से, अपने ढंग से पहुंच सकते हैं। पहुंचने पर, यात्रा एक ही मंजिल पर पूरी हो जाती है—उनकी भी, जो वीतरागता से जाते हैं—उनकी भी, जो तटस्थता से जाते हैं—उनकी भी, जो उपेक्षा से जाते हैं—उनकी भी, जो आनन्द से जाते हैं।

मंजिल एक है, रास्ते अनेक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को उसके क्या अनुकूल है उसे चुन लेना चाहिए। उसे इसकी बहुत चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि कौन गलत है, कौन सही है। उसे इस फिक्र में ही पड़ना चाहिए कि उसके अनुकूल, उसके स्वभाव के अनुकूल क्या है।

★

An Eulogy

By :

Radheshyam Sharma

You are that
Divine elephant before the birth of Buddha
in the dream of Mahamaya
that becomes wild amongst pine-trees
your eyebrows remind me
of the archery in the Zen tradition
and satori is near
beyond that many doors are opened
your devotees with half-opened eyes
waiting in tears bemoan
open sesame, open some hidden doors
But there is silence
of contrivance which appears mysterious
your eyes reflect
the holes of Krishna flute
which are darkened by the omniscient light
and there lies the corpse of ignorance
you wont speak
until your right hand is raised

and fingers start chirping
in the ears of unfathomed abysses
your curly hair has that
Christian quality which ripple like ocean waves
and dances according to your tune
Sometimes you talk about TREE
and only after next moment about WOOD
you contradict and contain multitude
you contra-indicate only
to test the edge of your Sword
you prefer to swim on
the curvacious breasts of the opposite waters
you are Advaita-Veda tist
and at the same hardened logician
But you know the futility
of the verbal expression
after so much talk about
non-verbal experience.
You have achieved some 'thing'
that in the near future
your mystical message will be
broadcasted on the international lines.

(The poem recited by the poet at Manali Dhyan-Sadhana-Shibir on 5th Oct., '70.)

अहिंसा

संकलन :
किशोरीरमण टण्डन

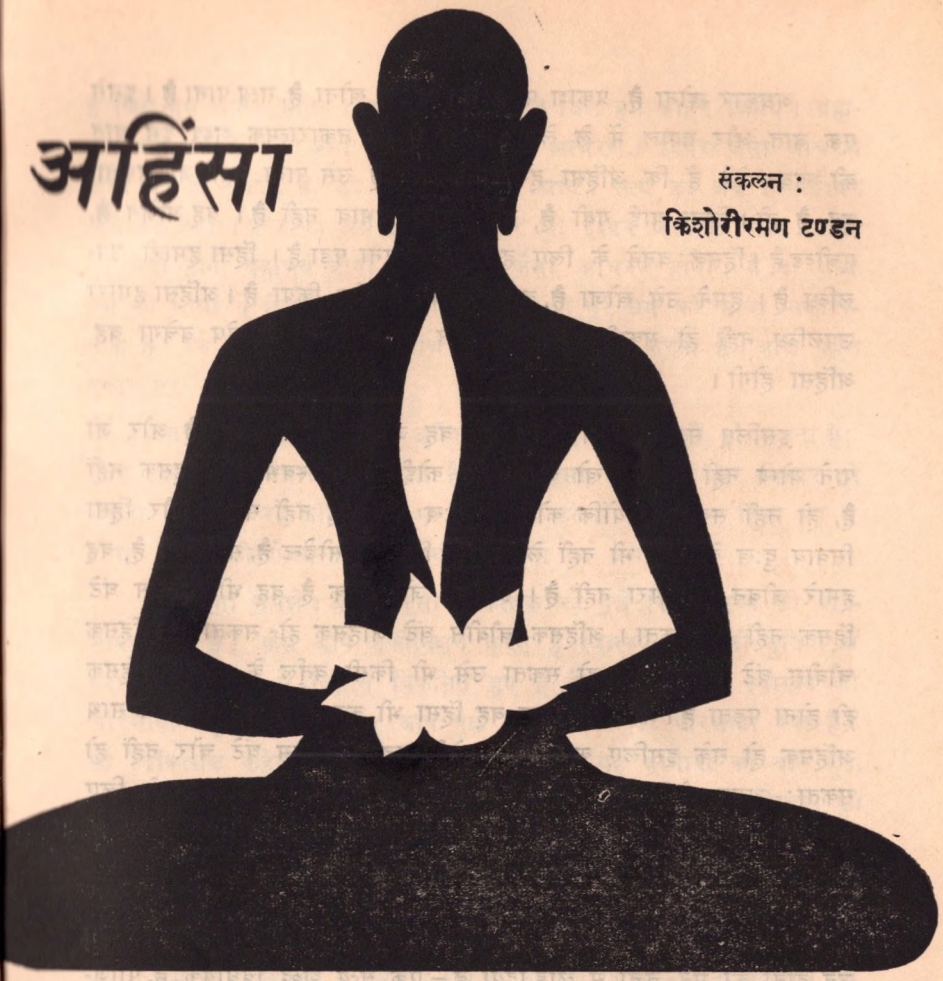

[षण्मुखानंद हाल, बम्बई में १ दिसंबर से ५ दिसंबर १९७०
तक पंच महाव्रत पर हुई चर्चा का प्रथम महाव्रत]

मेरे प्रिय आत्मन्,

आज मैं अहिंसा पर आप से बात करूंगा। पंच महाव्रत नकारात्मक हैं, अहिंसा भी। असल में खोना नकारात्मक ही हो सकता है, नेगेटिव ही हो सकता है। उपलब्धि पोजिटिव होगी, विधायक होगी। जो मिलेगा वह वस्तुतः होगा, और जो हमें खोना है वह वही खोना है जो वस्तुतः नहीं है।

अंधकार खोना है, प्रकाश पाना है। असत्य खोना है, सत्य पाना है। इससे एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि नकारात्मक शब्द इस बात की खबर देते हैं कि अहिंसा हमारा स्वभाव है उसे पाया नहीं जा सकता, वह है ही। हिंसा पाई गयी है, वह हमारा स्वभाव नहीं है। वह अर्जित है, एचीव्ड है। हिंसक बनने के लिए हमें कुछ करना पड़ा है। हिंसा हमारी उपलब्धि है। हमने उसे खोजा है, हमने उसका निर्माण किया है। अहिंसा हमारी उपलब्धि नहीं हो सकती; सिर्फ हिंसा न हो जाय तो जो शेष बचेगा वह अहिंसा होगी।

इसलिए साधना नकारात्मक है। वह जो हमने पा लिया है और जो पाने योग्य नहीं है, उसे खो देना। वैसे कोई आदमी स्वभाव से हिंसक नहीं है, हो नहीं सकता। क्योंकि कोई भी दुःख को चाह नहीं सकता और हिंसा सिवाय दुःख के कहीं भी नहीं ले जाती। हिंसा एक्सीडेन्ट है, संयोगिक है, वह हमारे जीवन की धारा नहीं है। इसलिए जो हिंसक है वह भी चौबीस घंटे हिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक चौबीस घंटे अहिंसक हो सकता है। हिंसक चौबीस घंटे हिंसक नहीं हो सकता उसे भी किसी वर्तुल के भीतर अहिंसक ही होना पड़ता है। असल में अगर वह हिंसा भी करता है तो किन्हीं के साथ अहिंसक हो सके इसलिए करता है। कोई आदमी चौबीस घंटे चोर नहीं हो सकता; अगर कोई चोरी भी करता है तो इसीलिए कि कुछ समय के लिए वह बिना चोरी के हो सके। चोर का लक्ष्य भी अचोरी है और हिंसक का लक्ष्य भी अहिंसा है। और इसलिए ये सारे शब्द नकारात्मक हैं।

धर्म की भाषा में दो शब्द विधायक हैं, बाकी सब शब्द नकारात्मक हैं। उन दोनों को मैंने चर्चा से छोड़ दिया है – एक सत्य शब्द विधायक है, पोजिटिव है, और एक ब्रह्मचर्य शब्द विधायक है पोजिटिव है।

यह भी प्राथमिक रूप से ख्याल में ले लेना जरूरी है कि जो पांच शब्द मैंने चुने हैं जिन्हें मैं पंच महाव्रत कह रहा हूं, वे नकारात्मक हैं। जब वे पांचों छूट जायेंगे तो जो भीतर उपलब्ध होगा वह होगा सत्य, और जो बाहर उपलब्ध होगा वह होगा ब्रह्मचर्य।

सत्य आत्मा बन जायेगी इन पांच के छूट जाने पर और ब्रह्मचर्य आचरण बन जायेगा इन पांच के छूटने पर। वे दो विधायक शब्द हैं। सत्य का अर्थ

है जिसे हम भीतर जानेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है जिसे हम बाहर जियेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ईश्वर जैसा आचरण उसी का हो सकता है, जो ईश्वर जैसा हो जाय। सत्य का अर्थ है—ईश्वर जैसे हो जाना। सत्य का अर्थ है ब्रह्म। और जो ईश्वर जैसा हो गया उसकी जो चर्या होगी ब्रह्मचर्य होगी और ब्रह्म जैसा आचरण होगा। ये दो शब्द धर्म की भाषा में विधायक हैं पोजिटिव हैं। बाकी पूरे धर्म की भाषा नकारात्मक है। इन पांच दिनों में इन पांच नकार पर विचार करना है। आज पहले नकार पर 'अहिंसा' लेंगे।

अगर ठीक से समझें तो अहिंसा पर कोई विचार नहीं हो सकता है; सिर्फ हिंसा पर विचार हो सकता है, और हिंसा के न होने पर विचार हो सकता है। ध्यान रहे अहिंसा का मतलब सिर्फ इतना ही है— हिंसा का न होना, हिंसा की ऐबसन्स, अनुपस्थिति। हिंसा का अभाव।

इसे ऐसा समझें। अगर किसी चिकित्सक को पूछें कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? कैसे आप डेफीनिशन करते हैं स्वास्थ्य की? तो दुनिया में स्वास्थ्य के बहुत से विज्ञान विकसित हुए हैं लेकिन कोई भी स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं करता। अगर आप पूछें कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? तो चिकित्सक कहेगा जहां बीमारी न हो। लेकिन यह बीमारी की बात हुई, यह स्वास्थ्य की बात न हुई। यह बीमारी का न होना हुआ। बीमारी की परिभाषा हो सकती है, डेफीनेशन हो सकती है कि बीमारी क्या है? लेकिन स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। स्वास्थ्य क्या है? तो इतना ही ज्यादा से ज्यादा हम कह सकते हैं कि जब कोई बीमारी नहीं है तो वह स्वास्थ्य है।

धर्म परम स्वास्थ्य है इसलिए धर्म की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। सब परिभाषा अधर्म की है। इन पांच दिनों में हम धर्म पर विचार नहीं करेंगे। अधर्म पर विचार करेंगे।

विचार से, बोध से अधर्म छूट जाय तो जो निर्विचार में शेष रह जाता है, उसी का नाम धर्म है। इसलिए जहां धर्म पर चर्चा होती है, वहां व्यर्थ चर्चा होती है। चर्चा सिर्फ अधर्म की हो सकती है। चर्चा धर्म की हो नहीं सकती। चर्चा बीमार की हो सकती है, चर्चा स्वास्थ्य की नहीं हो सकती। स्वास्थ्य को जाना जा सकता है, स्वास्थ्य को जिया जा सकता है, स्वस्थ हुआ जा सकता है— चर्चा नहीं हो सकती। धर्म को जाना जा सकता है, जिया जा सकता है, धर्म में

हुआ जा सकता है। धर्म की चर्चा नहीं हो सकती। इसलिए सब धर्मशास्त्र वस्तुतः अधर्म की चर्चा करते हैं, धर्म की कोई चर्चा नहीं करता।

पहली चर्चा हम अधर्म की करें जो है हिंसा। और जो जो हिंसक हैं उनके लिए यह पहला व्रत है। यह समझने जैसा मामला है कि आज हम जो विचार करेंगे वह यह मानकर करेंगे कि हम हिंसक हैं। इसके अतिरिक्त उस चर्चा का कोई अर्थ नहीं। ऐसे भी हम हिंसक हैं। हमारे हिंसा होने में भेद हो सकते हैं और हिंसा की इतनी पर्तें हैं, और इतनी सूक्ष्मताएं हैं कि कई बार ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम अहिंसा कह रहे हैं और समझ रहे हैं वह भी हिंसा का बहुत सूक्ष्म रूप हो। और ऐसा भी हो सकता है जिसे हम हिंसा कह रहे वह भी अहिंसा का बहुत स्थूल रूप हो।

जिन्दगी बहुत जटिल है। उदाहरण के लिए गांधी जी की अहिंसा को मैं हिंसा का सूक्ष्म रूप कहता हूं और कृष्ण की हिंसा को अहिंसा का स्थूल रूप कहता हूं। उसकी हम चर्चा करेंगे तो ख्याल में आ सकेगा। हिंसक को ही विचार करना जरूरी है अहिंसा पर। इसलिए यह भी प्रासंगिक है समझ लेना कि दुनिया में अहिंसा का विचार हिंसकों की जमात से आया।

जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। वे जमात हिंसकों की थी। उनमें एक भी ब्राह्मण नहीं था, उनमें एक भी वैश्य नहीं था। बुद्ध भी क्षत्रिय थे। दुनिया में अहिंसा का विचार ही हिंसकों की जमात से आया है। दुनिया में अहिंसा का ख्याल, जहां हिंसा घनी थी, सघन थी वहां पैदा हुआ है। असल में हिंसकों को ही सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा है अहिंसा के संबंध में। जो चौबीस घंटे हिंसा में रत हैं उन्हीं को यह दिखाई पड़ा है कि यह हमारी बहुत अंतर आत्मा नहीं है। असल में हाथ में तलवार हो, क्षत्रिय का मन हो तो बहुत देर न लगेगी यह देखने में कि हिंसा हमारी पीड़ा है, दुःख है। वह हमारा जीवन नहीं है। वह हमारा आनन्द नहीं है।

आज का व्रत हिंसक के लिए है। यद्यपि जो अपने को अहिंसक समझते हैं वह आपके व्रत पर विचार करते हुए मिलेंगे। मैं तो मानकर चलूंगा कि हम हिंसक इकट्ठे हुए हैं। और जब मैं हिंसा के बहुत रूपों की आपसे बात करूंगा तो आप समझ पायेंगे कि आप किस रूप के हिंसक हैं। और अहिंसक होने की पहली शर्त है, अपनी हिंसा को उसकी ठीक-ठीक जगह पर पहचान लेना। क्योंकि जो व्यक्ति हिंसा को ठीक से पहचान ले वह व्यक्ति हिंसक नहीं रह

सकता। हिंसक रहने की तरकीब, टेकनीक एक ही है कि हम अपनी हिंसा को अहिंसा समझे जाएं। इसलिए असत्य, सत्य के वस्त्र पहन लेता है। हिंसा, अहिंसा के वस्त्र पहन लेती है। यों धोखा पैदा होता है।

सुनी है मैंने एक कथा, सीरियन कथा है:

सौंदर्य और कुरूपता की देवियों को जब परमात्मा ने बनाया और वे पृथ्वी पर उतरीं तो एक झील के किनारे वस्त्र रख के वे स्नान करने गईं। स्वभावत: सौंदर्य की देवी को पता भी नहीं था कि उसके वस्त्र बदले जा सकते हैं। असल में सौंदर्य को अपने वस्त्रों का पता ही नहीं होता। सौंदर्य को अपनी देह का भी पता नहीं होता। सिर्फ कुरूपता को देह का बोध होता है। सिर्फ कुरूपता को वस्त्रों की चिंता होती है; क्योंकि कुरूपता वस्त्रों और देह की व्यवस्था से अपने को छिपाने का उपाय करती है। सौंदर्य की देवी झील में दूर स्नान करते निकल गई और तभी कुरूपता की देवी को मौका मिला; वह बाहर आई, उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहने और चलती बनी। जब सौंदर्य की देवी बाहर आई तो बहुत हैरान हुई। उसके वस्त्र वहां नहीं थे। वह नग्न खड़ी थी। गांव के लोग जागने शुरू हो गये और राहों पर चलने लगे। उधर कुरूपता की देवी उसके वस्त्र लेके भाग गई थी। तो मजबूरी में उसे कुरूपता के वस्त्र पहन लेने पड़े। और कथा कहती है कि तब से वह कुरूपता की देवी का पीछा कर रही है और खोज रही है, लेकिन अबतक मिलना नहीं हो पाया। कुरूपता अब भी सौंदर्य के वस्त्र पहने हुए है और सौंदर्य की देवी अभी भी मजबूरी में कुरूपता के वस्त्रों को ओढ़े हुए है।

असल में असत्य को जब भी खड़ा होना हो, तो उसे सत्य का चेहरा उधार लेना पड़ता है। उसे सत्य का ढंग अंगीकार करना पड़ता है। हिंसा को भी खड़े होने के लिए अहिंसा बनना पड़ता है। इसलिए अहिंसा की दिशा में जो पहली बात जरूरी है, वह यह है कि हिंसा के चेहरे पहचान लेनें जरूरी हैं। खासकर उसके अहिंसक चेहरे, नॉन-वायोलन्ट फेसेज पहचान लेना बहुत जरूरी है। हिंसा सीधा धोखा किसी को भी दे नहीं सकती। दुनिया में कोई भी पाप, सीधा धोखा देने में असमर्थ है। पाप को भी पुण्य की आड़ में ही धोखा देना पड़ता है। यह पुण्य के गुण गौरव की कथा है। इससे पता चलता है कि पाप भी अगर जीतता है तो पुण्य का चेहरा लगाकर ही जीतता है। जीतता सदा पुण्य ही है। चाहे पाप आपके ऊपर चेहरा बन के जीतता हो और चाहे खुद की अंतरात्मा

बन के जीतता हो। पाप खुद कभी जीतता नहीं। पाप अपने में हारा हुआ है। हिंसा जीत नहीं सकती; लेकिन दुनिया से हिंसा मिटती नहीं; क्योंकि हमने हिंसा के बहुत अहिंसक चेहरे खोज निकाले है। तो पहले हम हिंसा के चेहरे को समझने की कोशिश कर।

हिंसा का सबसे पहला रूप, सबसे पहली डायमेन्सन, उसका जो पहला आयाम है वह बहुत गहरा है, वहीं से पकड़ें। सबसे पहली हिंसा दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती है। टु कन्सीव दी अदर, एज दी अदर। जैसे ही मैं कहता कि हूं आप दूसरे हैं, मैं आपके प्रति हिंसक हो गया। असल में दूसरे के प्रति अहिंसक होना असंभव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं, ऐसा स्वभाव है। हम दूसरे के प्रति अहिंसक हो ही नहीं सकते। होने की बात ही नहीं उठती, क्योंकि दूसरे को दूसरा स्वीकार लेने में ही हिंसा शुरू हो गई। बहुत सूक्ष्म है, बहुत गहरी है यह बात।

सार्त्र का वचन है – 'दी अदर इज हेल' वह जो दूसरा है वह नरक है। सार्त्र के इस वचन से मैं थोड़ी दूर तक राजी हूं। उसकी समझ गहरी है। वह ठीक कह रहा है—दूसरा नरक है। लेकिन उसकी समझ अधूरी भी है। दूसरा नरक नहीं है, दूसरे को दूसरा समझने में नरक है। इसलिए जो भी स्वर्ग के थोड़े से क्षण हमें मिलते हैं वह तब मिलते हैं जब हम दूसरे को अपना समझते हैं। उसे हम प्रेम कहते हैं।

अगर मैं किसी को किसी क्षण में अपना समझता हूं, तो उसी क्षण मेरे और उसके बीच जो धारा बहती है वह अहिंसा की है। किसी क्षण में दूसरे को अपना समझने का क्षण ही प्रेम का क्षण है। लेकिन जिसको हम अपना समझते हैं वह भी गहरे में दूसरा ही बना रहता है। किसी को अपना कहना भी सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि तुम हो तो दूसरे, लेकिन हम तुम्हें अपना मानते हैं। इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं उसकी भी गहराई में हिंसा मौजूद रहती है। और इसलिए प्रेम की फ्लेम, वह जो प्रेम की ज्योति है, कभी कम कभी ज्यादा होती रहती है। कभी वह दूसरा हो जाता है, कभी अपना हो जाता है। चौबीस घंटे में यह कई बार बदलाहट होती है। जब वह जरा दूर निकल जाता है और दूसरा दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा बीच में आ जाती है। जब वह जरा करीब आ जाता है और अपना दिखाई पड़ने लगता है तब हिंसा थोड़ी कम

हो जाती है। लेकिन जिसे हम अपना कहते हैं वह भी दूसरा है। पत्नी भी दूसरी है चाहे कितनी भी अपनी हो। बेटा भी दूसरा है चाहे कितना ही अपना हो। पति भी दूसरा है चाहे कितना ही अपना हो। अपना कहने में भी दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नहीं हो पाता। प्रेम के भी हिंसा के अपने ढंग है।

प्रेम अपने ढंग से हिंसा करता है। प्रेमपूर्ण ढंग से हिंसा करता है। पत्नी, पति को प्रेमपूर्ण ढंग से सताती है। पति, पत्नी को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है। बाप बेटे को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है। और जब सताना प्रेम हो तो बड़ा सुरक्षित हो जाता है। फिर सताने में बड़ी सुविधा मिल जाती है; क्योंकि हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया है। शिक्षक विद्यार्थी को सताता है और कहता है तुम्हारे हित के लिए ही सता रहा हूं। जब हम किसी के हित के लिए सताते हैं तब सताना बड़ा आसान है—वह गौरवान्वित, पुण्यकारी हो जाता है। इसलिए ध्यान रखना, दूसरे को सताने में हमारे चेहरे सदा साफ होते हैं। अपनों को सताने में हमारे चेहरे कभी भी साफ नहीं होते। इसलिए दुनिया में जो बड़ी से बड़ी हिंसा चलती है वह दूसरे के साथ नहीं, वह अपनों के साथ चलती है।

सच तो यह है कि किसी को भी शत्रु बनाने के पहले मित्र बनाना अनिवार्य शर्त है। किसी को मित्र बनाने के लिए शत्रु बनाना अनिवार्य शर्त नहीं है। शर्त ही नहीं है। असल में शत्रु बनाने के लिए पहले मित्र बनाना जरूरी है। मित्र बनाये बिना शत्रु नहीं बनाया जा सकता। हां, मित्र बनाया जा सकता है, बिना शत्रु बनाये। उसके लिए कोई शर्त नहीं है शत्रुता की। मित्रता सदा शत्रुता के पहले है।

अपनों के साथ जो हिंसा है वह अहिंसा का गहरे से गहरा चेहरा है। इसलिए जिस व्यक्ति को हिंसा के प्रति जागना हो उसे पहले अपनों के प्रति जो हिंसा है उसके प्रति जागना होगा। लेकिन मैंने कहा, किसी किसी क्षण में दूसरा अपना मालूम पड़ता है। बहुत निकट हो गये होते हैं हम। यह निकट होना, दूर होना बहुत सरल है। पूरे वक्त बदलता रहता है।

इसलिए हम चौबीस घंटे प्रेम में नहीं होते। किसी के साथ प्रेम के सिर्फ क्षण होते हैं। प्रेम के घंटे नहीं होते। प्रेम के दिन नहीं होते। प्रेम के वर्ष नहीं होते — मोमेन्ट्स ओनली। लेकिन जब हम क्षणों से स्थायित्व का धोखा देते

हैं तो हिंसा शुरू हो जाती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो यह क्षण की बात है। अगले क्षण भी करूंगा, जरूरी नहीं। कर सकूंगा, जरूरी नहीं। लेकिन अगर मैंने वायदा किया कि अगले क्षण भी प्रेम जारी रखूंगा तो अगले क्षण जब हम दूर हट गए होंगे और हिंसा बीच में आ गई होगी तब, तब हिंसा प्रेम की शक्ल लेगी।

इसलिए दुनिया में जितनी अपनी बनानेवाली संस्थाएं हैं, सब हिंसक हैं। परिवार से ज्यादा हिंसा और किसी संस्था ने नहीं की, लेकिन उसकी हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। इसलिए अगर संन्यासी को परिवार छोड़ देना पड़ता था, तो उसका कारण था सूक्ष्मतम हिंसा से बाहर हो जाना, और कोई कारण नहीं था। सिर्फ एक ही कारण था कि हिंसा का एक सूक्ष्मतम जाल है जो अपने कहनेवाले कर रहे हैं। उनसे लड़ना भी मुश्किल है, क्योंकि वे हमारे हित में ही कर रहे हैं। परिवार का ही फैला हुआ बड़ा रूप समाज है, इसलिए समाज ने जितनी हिंसा की है उसका हिसाब लगाना कठिन है।

सच तो यह है कि समाज ने करीब-करीब व्यक्ति को मार डाला है, इसलिए ध्यान रहे जब आप समाज के सदस्य की हैसियत से किसी से व्यवहार करते हैं तब आप हिंसक होते हैं। अगर आप जैन की तरह किसी व्यक्ति से व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। हिंदू की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। मुसलमान की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। क्योंकि अब आप व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं कर रहे हैं, तब आप समाज की तरह व्यवहार कर रहे हैं। और अभी व्यक्ति ही अहिंसक नहीं हो पाया, तो समाज के अहिंसक होने की संभावना तो बहुत दूर है। समाज तो अहिंसक हो ही नहीं सकता। इसलिए दुनिया में जो बड़ी हिंसा है वह व्यक्तियों ने नहीं की, वह समाजों ने की है।

अगर एक मुसलमान को हम कहें कि इस मंदिर में आग लगा दो, तो अकेला मुसलमान व्यक्ति की हैसियत से पच्चीस बार सोचेगा। क्योंकि हिंसा बहुत साफ दिखाई पड़ रही है। लेकिन दस हजार मुसलमान की भीड़ में उसे खड़ा कर दें तब वह एकबार भी नहीं सोचेगा, क्योंकि दस हजार की भीड़ एक समाज है। अब हिंसा साफ न रह गई, बल्कि अब यह हो सकता है कि वह धर्म के ही हित में मंदिर में आग लगा दे। ठीक यही मस्जिद के साथ हिन्दू कर सकता है। ठीक यही दुनिया के सारे समाज एक दूसरे के साथ कर रहे हैं।

समाज का मतलब है अपनों की भीड़। और दुनिया में तबतक हिंसा मिटानी मुश्किल है जबतक हम अपनों की भीड़ बनाने की जिद बंद नहीं करते।

अपनों की भीड़ का मतलब है कि यह भीड़ सदा परायों के खिलाफ खड़ी होगी। इसलिए दुनिया के सब संगठन हिंसात्मक होते हैं। दुनिया का कोई संगठन अहिंसात्मक नहीं हो सकता। संभावना नहीं है अभी, शायद करोड़ों वर्ष लग जाएं। जब पूरा मनुष्य रूपांतरित हो जाय तो शायद कभी अहिंसात्मक लोगों का भी कोई मिलन हो सके।

अभी तो सब मिलन हिंसात्मक लोगों के हैं, चाहे परिवार ही हो। परिवार दूसरे लोगों के खिलाफ खड़ी की गई इकाई है। परिवार बायोलोजिकल युनिट है। जैविक इकाई है, दूसरी जैविक इकाइयों के खिलाफ। समाज, दूसरे समाजों के खिलाफ सामाजिक इकाई है। राज्य, दूसरे राज्यों के खिलाफ राजनैतिक इकाई है। यह सब इकाइयां हिंसा की हैं। मनुष्य उस दिन अहिंसक होगा जिस दिन मनुष्य निपट व्यक्ति होने को राजी है।

इसलिए महावीर को जैन नहीं कहा जा सकता और जो कहते हों वह महावीर के साथ अन्याय करते हैं। महावीर किसी समाज के हिस्से नहीं हो सकते। कृष्ण को हिन्दू नहीं कहा जा सकता और जीसस को ईसाई कहना निपट पागलपन है। ये व्यक्ति हैं, इनकी इकाई ये खुद हैं। ये किसी दूसरी इकाई के साथ जुड़ने को राजी नहीं हैं।

संन्यास समस्त इकाइयों के साथ जुड़ने से इन्कार है। असल में संन्यास इस बात की खबर है कि समाज हिंसा है और समाज के साथ खड़े होने में हिंसक होना ही पड़ेगा। अपनों का चेहरा भी हिंसा का सूक्ष्मतम रूप है। इसलिए जिसे प्रेम कहते हैं वह भी अहिंसा नहीं बन पाता।

अपना जिसे कहते हैं वह भी 'मैं' नहीं हूं। वह भी दूसरा है। अहिंसा उस क्षण शुरू होगी जिस दिन दूसरा नहीं है। 'अदर इज नॉट'। यह नहीं कि वह अपना है, वह है ही नहीं। लेकिन यह क्या बात है कि दूसरा, दूसरा दिखाई पड़ता है। होगा ही दूसरा, तभी दिखाई पड़ता है। नहीं, लेकिन जैसा दिखाई पड़ता है वैसा हो ही ऐसा जरूरी नहीं है। अंधेरे में रस्सी भी सांप दिखाई पड़ती है। रोशनी होने से पता चलता है कि ऐसा नहीं है। खाली आंखों से देखने पर पत्थर ठोस दिखाई पड़ता है। विज्ञान की गहरी आंखों से देखने पर ठोसपन विदा हो जाता है। पत्थर सब्स्टेंशिअल नहीं रह जाता। असल में पत्थर-पत्थर ही नहीं रह जाता। पत्थर मटीरियल ही नहीं रह जाता। पत्थर पदार्थ ही नहीं रह जाता, सिर्फ एनॅर्जी रह जाता। जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जैसा दिखाई पड़ता है वह हमारे देखने की क्षमता की सिर्फ

सूचना है। सिर्फ दूसरा है इसलिए दिखाई पड़ता है। नहीं, दूसरे को दिखाई पड़ने का कारण दूसरे का होना नहीं है। दूसरे का दिखाई पड़ने का कारण बहुत अद्भुत है उसे समझ लेना जरूरी है। उसे बिना समझे हम हिंसा की गहराई को न समझ सकेंगे।

दूसरा इसलिए दिखाई पड़ता है कि मैं अभी नहीं हूं। यह शायद ख्याल में नहीं आएगा एकदम से। मैं नहीं हूं, मुझे मेरा कोई पता नहीं है। इस मेरे न होने को, इस मेरे पता न होने को, इस मेरे आत्म अज्ञान को मैंने दूसरे का ज्ञान बना लिया। हम दूसरे को देख रहे हैं क्योंकि हम अपने को देखना नहीं जानते और देखना तो पड़ेगा ही। देखने की दो संभावनाएं हैं या तो वह अदर डायरेक्टेड हो, दूसरे की तरफ हो तीर देखने का। या इनर डायरेक्टेड हो, अंतर की ओर तीर हो – इनर ऐरोड या अदर ऐरोड हो।

दूसरे को देखें या अपने को देखें, यह देखने के दो विकल्प है। यह देखने के दो डायमेनशन हैं : चूंकि हम अपने को देख ही नहीं सकते, देख ही नहीं पाते, देखा ही नहीं, हम दूसरे को ही देखते रहते हैं।

दूसरे का होना आत्म अज्ञान से पैदा होता है। असल में यह ध्यान का डायमेनशन हैं। एक युवक हॉकी के मैदान में खेल रहा है, पैर में चोट लग गई, खून बह रहा है। हजारों दर्शकों को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून बह रहा है; सिर्फ उसे पता नहीं। क्या हो गया उसको? होश में पूरा नहीं है? होश में है, क्योंकि गेंद की जरा-सी गति भी उसे दिखाई पड़ रही है। गति में बेहोश है? बेहोश बिल्कुल नहीं है, क्योंकि दूसरे खिलाड़ियों का जरा-सा मूवमेन्ट, जरा-सी हलचल उसकी आंख में है। बेहोश वह नहीं है, क्योंकि खुद को पूरी तरह संतुलित करके वह दौड़ रहा है। लेकिन यह पैर से खून गिर रहा है यह दिखाई क्यों नहीं पड़ रहा है? यह उसे पता क्यों नहीं चल रहा है? उसकी सारी अटेनशन 'अदर डायरेक्टेड' है। उसकी चेतना इस समय 'वन डायमेनशनल' है। वह बाहर की दिशा में लगी है। वह खेल में व्यस्त है। वह इतने जोर से व्यस्त है कि चेतना का टुकड़ा भी नहीं बचा है जो भीतर की तरफ जा सके। सब बाहर चेतना बह रही है। खेल बंद हो गया है। अब वह पैर पकड़ के बैठ गया और रो रहा है – और कह रहा है, बहुत चोट लग गई! मुझे पता क्यों नहीं चला? आधा घंटा वह कहां था? आधा घंटा भी वह था, लेकिन दूसरे पर केन्द्रित था। अब लौट आया अपने पर। अब उसे पता चल रहा है कि पैर में चोट लग गई, दर्द है, पीड़ा है। अब उसका ध्यान अपने

शरीर की तरफ गया। लेकिन गहरे में वह अभी भी अदर डायरेक्टेड है। अभी भी ध्यान उसका शरीर पर गया है। वह भी दूसरा ही है। वह भी बाहर ही है। अभी भी उसे पता चल रहा है कि पैर में दर्द हो रहा है। अभी भी उसे उसका पता नहीं चल रहा है जिसे पता चल रहा है कि दर्द हो रहा है। अभी भी उसका उसे कोई पता नहीं। अभी और भीतर की यात्रा संभव है। अभी वह बीच में खड़ा है। दूसरा बाहर है, मैं भीतर हूं, और दोनों के बीच में मेरा शरीर है। हमारी यात्रा, या तो दूसरा या अपना शरीर– इनके बीच होती रहती है। हमारी चेतना इनके बीच डोलती रहती है। या तो हम दूसरे को जानते हैं या अपने शरीर को जानते हैं, वह भी दूसरा है।

असल में अपने शरीर का मतलब केवल इतना है कि हमारे और दूसरे के बीच संबंधों के जो तीर हैं, तट हैं, जहां हमारी चेतना की नदी बहती रहती है, वह मेरा शरीर और आपका शरीर इनके बीच बहती रहती है। आपसे भी मेरा मतलब आपसे नहीं है, क्योंकि जब मेरा मतलब मेरे शरीर से होता है, तो आपसे मतलब सिर्फ आपके शरीर से होता है। न आपकी चेतना से मुझे कोई प्रयोजन है, न मुझे आपकी चेतना का कोई पता है। जिसे अपनी चेतना का पता नहीं उसे दूसरे की चेतना का पता हो भी कैसे सकता है?

मुझे मेरे शरीर का पता है और आपके शरीर का पता है। अगर ठीक से कहें तो हिंसा दो शरीरों के बीच का संबंध है। रिलेशनशिप बिटवीन टू बॉडीज़। दो शरीरों के बीच अहिंसा का कोई संबंध नहीं हो सकता। शरीरों के बीच संबंध सदा हिंसा का होगा। अच्छी हिंसा का हो सकता है, बुरी हिंसा का हो सकता है, खतरनाक हिंसा का हो सकता है, गैर खतरनाक हिंसा का हो सकता है। लेकिन तय करना मुश्किल है कि खतरा कब गैर खतरा हो जाता है, गैर खतरा कब खतरा बन जाता है।

एक आदमी प्रेम से किसी को छाती से दबा रहा है। बिल्कुल गैर खतरनाक हिंसा है। असल में दूसरे के शरीर को दबाने का सुख ले रहा है लेकिन और थोड़ा बढ़ जाय और जोर से दबाये तो घबड़ाहट शुरू हो जाएगी। छोड़े ही ना और जोर से दबाये और श्वास घुटने लगे, तो जो प्रेम था वह तत्काल घृणा बन जाएगा, हिंसा बन जाएगा।

ऐसे प्रेमी हैं जिनको हम सैडिस्ट कहते हैं, जिनको हम परपीड़क कहते हैं; वे जब तक दूसरों को सता न लें तब तक उनका प्रेम पूरा नहीं होता। वैसे हम सब प्रेम में एक दूसरे को थोड़ा सताते हैं। जिसको हम चुंबन कहते हैं वह

सताने का एक ढंग है। लेकिन धीमा, माइल्ड। हिंसा उसमें पूरी है। लेकिन थोड़ा और बढ़ जाय, काटना शुरू हो जाय, तो हिंसा थोड़ी बढ़ी। कुछ प्रेमी काटते भी हैं, लेकिन तबतक भी चलेगा। लेकिन फिर फाड़ना-चीरना शुरू हो जाय! जिन्होंने प्रेम-शास्त्र लिखा है उन्होंनें नख-दंश को भी प्रेम की एक व्यवस्था दी है। नाखून से प्रेमी को दंश पहुंचाना वह भी प्रेम है।

हिंदुस्तान में जो कामशास्त्र के ज्ञाता हैं वह यह कहते हैं—जबतक प्रेमी को नाखून से खुरचें नहीं तबतक उसके भीतर प्रेम ही पैदा नहीं होता। लेकिन नाखून से खुरचना है, तो फिर एक औजार लेके खुरचने में हर्ज क्या है? वह बढ़ सकता है, वह बढ़ जाता है! क्योंकि जब नाखून से खुरचना रोज की आदत बन जाएगी तब फिर रस खो जाएगा। फिर एक हथियार रखना पड़ेगा। जिस आदमी के नाम पर सैडीज़्म शब्द बना है, वह आदमी अपने साथ एक कोड़ा भी रखता था, एक कांटा भी रखता था पांच अंगुलियों वाला। पत्थर भी रखता था। और भी प्रेम के कई साधन अपने बैग में रखता था। और वह जब किसी को प्रेम करता तो दरवाजा लगा के ताले बंद करके बस कोड़ा निकाल लेता। पहले वह दूसरे के शरीर को पीटता। जब उसकी प्रेयसी का सारा शरीर कोड़ों से लहू-लुहान हो जाता तब वह कांटे चुभाता। यह सब प्रेम था।

आप कहेंगे, यह अपनावाला प्रेम नहीं है, बस यह सिर्फ थोड़ा आगे गया है। डिफरेन्स इज ओनली ऑफ डिग्रीज़। इसमें कोई ज्यादा, कोई क्वालीटेटिव फर्क नहीं है, कोई गुणात्मक फर्क नहीं है। क्वान्टीटेटीव, परिमाण का, मात्रा का फर्क है। असल में दूसरे के शरीर से हमारे जो भी संबंध हैं, वह कम या ज्यादा हिंसा के होंगे। उससे ज्यादा कोई फर्क नहीं पड़ता।

कई प्रेमियों ने अपनी प्रेयसियों की गर्दनें दबा डाली हैं। प्रेम के क्षणों में मार ही डाला है। उन पर मुकद्दमे चले हैं। अदालतें नहीं समझ पायीं कि यह कैसा प्रेम है? लेकिन अदालतों को समझना चाहिए, यह थोड़ा आगे बढ़ गया प्रेम है! यह संबंध जरा घनिष्ठ हो गया है। वैसे सभी प्रेमी एक-दूसरे की गर्दन दबाते हैं। कोई हाथ से दबाता है, कोई मन से दबाता है, कोई और-और तरकीबों से दबाता है। लेकिन, प्रेमी को दबाना यह हमारा ढंग रहा है। कम-ज्यादा की बात दूसरी है।

दो शरीरों के बीच में जो संबंध है वह चाहे छुरा मारने का हो और चाहे चुंबन का, आलिंगन का हो उसमें बुनियादी फर्क नहीं है। इसमें मूलतः फर्क नहीं

है। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि दूसरे के शरीर में छुरा भोंकने में कुछ लोगों को जो आनंद आता है क्या कभी आपने ख्याल किया कि उसका ख्याल सेक्स्युअल पेनीटेशन से पैदा हुआ है ? दूसरे के शरीर में छुरा भोंकने का जो रस है या दूसरे के शरीर को जो गोली मार देने का रस है क्या वह यौन-पर्वर्शन से पैदा नहीं हुआ ?

असल में यौन का सुख भी दूसरे के शरीर में प्रवेश का सुख है। अगर किसी आदमी का दिमाग थोड़ा विकृत हो गया, तो वह प्रवेश के दूसरे रास्ते खोज सकता है। विकृत कहें या इन्वेन्टिव कहें, आविष्कार हो गया। वह कह सकता है कि दूसरे के शरीर में यौन की दृष्टि से प्रवेश तो जानकर भी करते हैं। इसमें आदमी की क्या खूबी ? आदमी और भी तरकीब खोजता है जिससे वह दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाय। जो गहरे में खोजते हैं वे कहते हैं कि दूसरे की हत्या का सुख परवर्टेड सेक्स है, वे कहते हैं—दूसरे को मार डालने का रस दूसरे में प्रवेश का रस है।

कभी-कभी छोटे बच्चे, आपने ख्याल किया, अगर चलता हुआ कीड़ा देखते हैं, तो उसको तोड़ के देखेंगे। फूल मिलेगा तो उसको फाड़ के देखेंगे। क्या आप सोच सकते हैं किसी आदमी को दूसरे आदमी को फाड़ के देखने में वह जिज्ञासा काम कर रही है ? क्या आप कह सकते हैं कि विज्ञान भी बहुत गहरे में वायलन्स है ? चीजों को फाड़ के देखने की चेष्टा है, लेकिन स्वीकृत। अगर आप मेंढ़क को मार रहे हैं बाहर, तो लोग कहेंगे बुरा कर रहे हैं। लेकिन लेबोरेटरीज के टेबल पर मेंढ़क को काट रहे हैं तो कोई बुरा नहीं कहेगा। लेकिन हो सकता है यह काटनेवाला जो रस ले रहा है, वह वही रस है।

अभी बहुत देर है कि हम वैज्ञानिक के चित्त को ठीक से समझ पायें, अन्यथा हमें पता चलेगा कि उसने अपनी हिंसा की वृत्ति को वैज्ञानिक रूप दे दिया है। जो स्वीकृत रूप है। और हम हिंसा की वृत्ति को बहुत रूप दे सकते हैं। कभी हमने यज्ञ का रूप दे दिया था। वह रीलिजीयस ढंग था हिंसा का।

किसी आदमी को किसी जानवर को काटना है। काटने में बुराई है पाप है—तो फिर काटने को पुण्य बना लिया जाय। तो हम यज्ञ में काटें, देवता की वेदी पर काटें, तो पुण्य हो जाएगा। काटने का मजा लेना है, लेकिन अब वह पागलपन हो गया। अब हम जानते हैं कि देवता की कोई वेदी नहीं है। अब हम जानते हैं कि कोई यज्ञ की वेदी नहीं है, जहां काटा जा सके। और

अगर काटना है तो ईमानदारी से यह कह के काटो की मुझे काटना है। देवता को क्यों फंसाते हो ? इसमें भगवान को क्यों बीच में लाते हो ?

रामकृष्ण की जिंदगी में एक उल्लेखनीय बात है कि एक आदमी रामकृष्ण के पास निरंतर आता था। हर वर्ष काली के उत्सव पर वह सैकड़ों बकरे कटवाता था। फिर बकरे कटने बंद हो गये। फिर उस आदमी ने जलसा मनाना बंद कर दिया। फिर दो वर्ष बीत गये। रामकृष्ण के पास वह बहुत दिन नहीं आया। फिर अचानक आया। रामकृष्ण ने कहा, क्या काली की भक्ति छोड़ दी ? अब बकरे नहीं कटवाते ? उसने कहा— अब दांत ही न रहे, अब बकरे कटवाने से क्या फायदा ? फिर रामकृष्ण ने कहा—क्या तुम दांतों की वजह से बकरे कटवाते थे ? तो उसने कहा—जब दांत गिरे तब मुझे पता चला कि अब मुझे कोई रस न रहा। ऐसे मांस खाने में कठिनाई पड़ती है, काली की आड़ ले के खाना आसान हो जाता है।

लेकिन पुरानी वेदियां गिर गईं धर्म की। अबका धर्म विज्ञान है। इसलिए विज्ञान की वेदी पर अब हिंसा चलती है, बहुत तरह की हिंसा चलती है। विज्ञान हजार तरह के टार्चर के उपाय कर लेता है, लेकिन कोई इन्कार हम नहीं करेंगे। इसी तरह हमने धर्म की वेदी पर इन्कार नहीं किया था, क्योंकि उस समय धर्म की वेदी स्वीकृत थी। अब विज्ञान की वेदी स्वीकृत है।

अगर एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में जाएं, तो बहुत हैरान हो जाएंगे। कितने चूहे मारे जा रहे हैं। कितने मेंढक काटे जा रहे हैं। कितने जानवर उल्टे-सीधे लटकाये गये हैं, कितने जानवर बेहोश कर डाले गये हैं। कितने जानवरों की चीर-फाड़ की जा रही हैं। यह सब चल रहा है। लेकिन वैज्ञानिक को बिलकुल पक्का ख्याल है कि वह हिंसा नहीं कर रहा है। उसका ख्याल है वह आदमी के लिए, खोजने के लिए कर रहा है। बस तब हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया; अब चलेगा ! जब आप किसी को प्रेम करते हैं तो ख्याल करना कि आपके भीतर की हिंसा तो प्रेम की शक्ल नहीं बन जाती ? अगर बन जाती है तो वह खतरनाक से खतरनाक शक्ल है, क्योंकि उसका स्मरण आना बहुत मुश्किल है। हम समझते रहेंगे हम प्रेम ही कर रहे हैं। दूसरा, तबतक दूसरा है, जब तक मुझे पता नहीं है। इसे मैं हिंसा की बुनियाद कहता हूं।

हिंसा का अर्थ है दी अदर ओरियेन्टेड कॉन्सिथसनेस, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना। स्वयं से उत्पन्न हो रही चेतना अहिंसा बन जाती है, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना हिंसा बन जाती है। लेकिन हमें दूसरे का ही पता है। हम जब भी

देखते हैं दूसरे को देखते हैं। और अगर हम कभी अपने संबंध को भी सोचते हैं, अपने बाबत भी सोचते हैं, तो हमेशा पायेंगे कि दी अदर्स, वह दूसरे हमारी बाबत क्या सोचते हैं? उसी तरह हम भी सोचते हैं। अगर मेरी अपनी भी कोई शक्ल है, तो वह आपके द्वारा दी गई शक्ल है। इसलिए मैं सदा डरा रहूंगा। कहीं आपके मन में मेरे प्रति बुरा ख्याल न आ जाय, अन्यथा मेरी शक्ल बिगड़ जाएगी। क्योंकि मेरी अपनी तो कोई शक्ल है नहीं। अखबारों की कटिंग फाड़ के मैंने अपना चेहरा बनाया। आपकी बातें सुनके आपकी ओपीनीयन इकट्ठी करके, मैंने अपनी प्रतिमा बनाई है। अगर उसमें से एक पीछे खिसक जाता है, कोई भक्त गाली देने लगता है, कोई अनुयायी दुश्मन हो जाता है, कोई मित्र साथ नहीं देता, कोई बेटा बाप को इन्कार करने लगता है, तो बाप की प्रतिमा गिरने लगती है। गुरु की प्रतिमा गिरने लगती है। वह समझने लगता है कि मरा! क्योंकि मेरी तो अपनी कोई शक्ल नहीं है, मेरी अपनी कोई प्रतिमा नहीं। इन्हीं सबने मुझे एक प्रतिमा दी थी।

बाप को अपने बाप होने का पता नहीं है। किसी के बेटा होने भर का पता है। उसके बेटा होने की वजह से वह बाप है। अगर वह बेटा बेटा होने से इन्कार करने लगे, तो बाप का बाप होना मुश्किल में पड़ गया। पति को पति होने का कोई पता नहीं है, वह पत्नी के संदर्भ में पति है। अगर पत्नी जरा सी स्वतंत्रता लेने लगे, तो उसका पति होना गड़बड़ हो गया। हम सब दूसरों के ऊपर निर्भर हैं। वह जो दूसरे पर निर्भर है वह निरंतर दूसरे को देखता रहेगा।

स्वप्न में भी हम दूसरों को देखते हैं। जागने में भी दूसरों को देखते हैं। ध्यान के लिए बैठे तो भी दूसरों का ध्यान करते हैं। अगर ध्यान को भी बैठेंगे, तो महावीर का ध्यान करेंगे, बुद्ध का ध्यान करेंगे, कृष्ण का ध्यान करेंगे। वहां भी 'दी अदर' मौजूद है। जिस ध्यान में दूसरा मौजूद है, वह हिंसात्मक ध्यान है। जिस ध्यान में दूसरा आप ही रह गये सिर्फ, वह शायद आपको अहिंसा में ले जाएगा।

दूसरा है, इसलिए दिखाई पड़ रहा, ऐसा नहीं; हम दिखाई नहीं पड़ रहे हैं तो हमारी चेतना दूसरे पर केन्द्रित हो गई। जिस दिन मैं दिखाई पड़ूंगा मुझे, उस दिन आप दूसरे की तरह दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे।

इसलिए महावीर जब चींटी से बच के चल रहे हैं, तो आप इस भ्रांति में मत रहना कि आप भी चींटी से बच के चलते हैं, तो वही कारण है जो महावीर का कारण है। आप जब चींटी से बच के चलते हैं तो चींटी से

बच के चल रहे हैं। और महावीर जब चींटी से बच के चलते हैं तो अपने पर ही पैर न पड़ जाए इसलिए बच के चल रहे हैं। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। महावीर का बचना अहिंसा है। आपका बचना हिंसा ही है। दूसरा मौजूद है कि चींटी न मर जाए; और चींटी न मर जाय इसकी चिंता आपको क्यों है? इसकी चिंता सिर्फ इसलिए है—कहीं चींटी मरने से पाप न लग जाय। वह अदर ओरिएन्टेड कॉन्सियसनेस है। कहीं चींटी के मरने से पाप न लग जाय, कहीं चींटी के मरने से नरक न जाना पड़े, कहीं चींटी के मरने से पुण्य न छिन जाय, कहीं चींटी के मरने से स्वर्ग न खो जाय। चींटी से आपका कोई प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन सदा अपने से है; लेकिन चींटी पर ओरियेन्टेड है। दिमाग चींटी पर केन्द्रित है तो चींटी से बच रहे हैं। नहीं, आपको ऐसा नहीं लगता जैसा महावीर को लगता है। महावीर का चींटी से बचना बहुत भिन्न है—वह चींटी से बचना ही नहीं है। अगर महावीर से हम पूछें कि क्यों बच रहे हैं? तो वह कहेंगे : अपने पर ही पैर कैसे रखा जा सकता है? नहीं, यह बचना नहीं है। असल में अपने पर पैर रखना असंभव है।

रामकृष्ण एक दिन गंगा पार कर रहे हैं। बैठे हैं नाव में। अचानक चिल्लाने लगे हैं जोर से कि 'मत मारो! मत मारो! क्यों मुझे मारते हो?' पास, आस-पास बैठे लोग कोई भी उनको नहीं मार रहा है। सब भक्त हैं। उनके पैर छूते हैं, पैर दबाते हैं, उनको कोई मारता तो नहीं। सब कहने लगे—आप क्या कह रहे हैं? कौन आपको मार रहा है?

रामकृष्ण चिल्लाये जा रहे हैं। उन्होंने पीठ उघाड़ दी। पीठ पर देखा तो कोड़े के निशान हैं। खून झलक आया है। सब बहुत घबड़ा गये। रामकृष्ण से पूछा ये क्या हो गया? किसने मारा आपको? रामकृष्ण ने कहा—वह देखो, वे मुझे मार रहे हैं। उस किनारे पर मल्लाह एक आदमी को मार रहे हैं कोड़ों से, और उसकी पीठ पर जो निशान बने हैं वह रामकृष्ण की पीठ पर भी बन गये। ठीक वही निशान। और जब तट पर उतरकर भीड़ लग गई और दोनों के निशान देखे गये, तो तय करना मुश्किल हो गया कि कोड़े किसको मारे गये? ओरिजिनल कौन है?

रामकृष्ण को चोट ज्यादा पहुंची है मल्लाह से। निशान वही हैं। चोट ज्यादा है। क्योंकि मल्लाह तो विरोध भी कर रहा होगा भीतर, रामकृष्ण ने तो पूरा स्वीकार ही कर लिया! चोट ज्यादा गहरी हो गई। लेकिन रामकृष्ण

के मुख से जो शब्द निकला 'मुझे मत मारो' इसका मतलब समझते हैं? एक शब्द है हमारे पास सिम्पेथी, सहानुभूति। यह सहानुभूति नहीं है।

सहानुभूति हिंसक के मन में होती है। वह कहता है, मत मारो उसे। दूसरों को मत मारो। सहानुभूति का मतलब है कि मुझे दया आती है। लेकिन दया सदा दूसरे पर आती है। यह सहानुभूति नहीं है; यह समानुभूति है, इम्पेथी है। सिम्पेथी नहीं है। यहां रामकृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि उसे मत मारो। रामकृष्ण कह रहे हैं 'मुझे' मत मारो – यहां दूसरा गिर गया।

असल में दूसरे से जो हमारा फासला है वह शरीर का ही फासला है – चेतना का कोई फासला नहीं। चेतना के तल पर दो नहीं हैं हम। दूसरे को बचायें तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। हम दूसरे को बचायें तो वह भी हिंसा ही है। जिस दिन हम ही रह जाते हैं और बचने को कोई भी नहीं रह जाता, उस दिन अहिंसा फलित होती है।

अहिंसा की बाबत गहरी हिंसा को समझ लेना जरूरी है, कि वह जो दूसरा है उससे छुटकारा कैसे होगा? वह सार्त्र ठीक कहता है कि अदर इज हेल, पर ज्यादा अच्छा होगा कि सार्त्र के वचन में थोड़ा फर्क कर दिया जाय– दी अदर इज नाट हेल, दी अदरनेस इज हेल। दूसरा नहीं है नर्क, दूसरापन नर्क है। दूसरापन गिर जाय, तो दूसरा भी दूसरा नहीं है।

महावीर की अहिंसा को नहीं समझा जा सका, क्योंकि हम हिंसकों ने महावीर की अहिंसा को हिंसा की शब्दावली दे दी। हमने कहा– दूसरे को दुःख मत दो। लेकिन ध्यान रहे जब तक दूसरा है तब तक दुःख जारी रहेगा। चाहे उसकी छाती में छुरा भोंको और चाहे उसे दूसरे की नजर से छुरा भोंको, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

क्या आपको ख्याल है आप कमरे में अकेले बैठे हों और कोई भीतर आ जाय, तो आप वही नहीं रह जाते जो आप अकेले थे। क्योंकि दूसरे ने आके हिंसा शुरू कर दी। उसकी आंख, उसकी मौजूदगी। वह आपको मार नहीं रहा है, आपको चोट नहीं पहुंचा रहा है, बहुत अच्छी बातें कर रहा है। कह रहा है, आप कुशल से तो हैं। लेकिन उसका देखना – – उसका आना – –! जैसे ही दूसरा भीतर आता है – ही हैज मेड यू दी अदर। जैसे ही कोई कमरे में भीतर आया उसने आपको भी दूसरा बना दिया। हिंसा शुरू हो गई। अब उसकी आंख, उसका निरीक्षण, उसका देखना, उसका बैठना, उसका

होना, उसकी प्रेजेन्स हिंसा है। अब आप डर गये। क्योंकि हम सिर्फ हिंसा से डर जाते हैं। अब आप भयभीत हो गये, अब आप संभल कर बैठ गये। आप अपने बाथरूम में और तरह के आदमी होते हैं, आप अपने बैठकखाने में और तरह से आदमी हो जाते हैं। क्योंकि बैठकखाने में हिंसा की संभावना है। बैठकखाना वह जगह है जहां हम दूसरे की हिंसा को झेलते हैं। जहां हम दूसरों का स्वागत करते हैं, जहां हम दूसरों को निमंत्रित करते हैं।

अहिंसात्मक ढंग से हमने बैठकखाना सजाया है। इसलिए बैठकखाना हम खूब सजाते हैं कि दूसरे की हिंसा कम से कम हो जाय। वह सजावट दूसरे की हिंसा को कम कर दे। इसलिए बैठकखाने के चेहरे हमारे मुस्कराते होते हैं, क्योंकि मुस्कराहट दूसरे की हिंसा के खिलाफ आरक्षण है। अच्छे शब्द बोलते हैं बैठकखाने में, शिष्टाचार बरतते हैं, सभ्यता बरतते हैं– यह सब इन्तजाम है। यह सब सिक्योरीटी आफ सेफ्टी मेजर्स हैं कि दूसरे आदमी की हिंसा को थोड़ा कम करो।

अगर आप भी गाली देंगे तो दूसरे की हिंसा को प्रबल होने का मौका मिलेगा। आप कहते हैं– बड़ी कृपा की कि आप आये! अतिथि तो भगवान है! बिराजिए! तो उस दूसरे की हिंसा को आप कम रहे हैं। अब उसे हिंसक होने में कठिनाई पड़ेगी। दूसरा भी आपकी हिंसा को कम कर रहा है। इसलिए जब दो आदमी पहली दफे मिलते हैं तब उनके बीच बड़ा शिष्टाचार होता है। तीन-चार घंटे के बाद शिष्टाचार गिर जाता है। तीन-चार दिन के बाद समाप्त हो जाता है। तीन-चार महीने के बाद वह एक दूसरे को गाली देने लगते हैं। हालांकि कहते हैं, प्रेम में दे रहे हैं, दोस्ती में दे रहे हैं!

पहले मिलते हैं तो कहते हैं 'आप', दो-तीन महीन के बाद मिलते हैं तो कहते हैं 'तू'। ये बात क्या हो गई तीन महीने में? असल में अब दोनों की हिंसा सेटल्ड, व्यवस्थित हो गई। अब इतना ज्यादा सुरक्षा का इन्तजाम करना जरूरी नहीं।

दूसरे की मौजूदगी भी हिंसा बन जाती है। आपके लिए ही नहीं, आपकी मौजूदगी भी दूसरे के लिए हिंसा बन जाती है।

महावीर की जिंदगी में एक बहुत अद्भुत घटना है। महावीर संन्यास लेना चाहते थे, तो उन्होंने अपनी मां को कहा कि मैं जाऊं संन्यास ले लूं?

उनकी मां ने कहा, मेरे सामने दुबारा यह बात मत करना। जबतक मैं जिंदा हूं तब तक संन्यास नहीं ले सकते। मुझ पे बड़ा दुःख पड़ जाएगा। महावीर लौट गये।

मां ने न सोचा होगा, क्योंकि आमतौर से संन्यासी इतने अहिंसक नहीं होते कि इतनी जल्दी लौट जाएँ। अगर हिंसक वृत्ति होती महावीर की तो और जिद पकड़ जाते। कहते—नहीं ले के ही रहूंगा। संसार तो सब माया-मोह है। कौन अपना? कौन पराया? यह सब तो झूठ है! संन्यास लेके रहूंगा। तुम रोकने वाली कौन हो? अब बंधन कैसा? लेकिन नहीं; महावीर चुपचाप लौट गये। मां भी हैरान हुई होगी, क्योंकि ऐसा संन्यासी जो एक दफे कहे संन्यास लेना चाहता है और मां कह दे, पिता कह दे, पत्नी कह दे कि नहीं मुझे बहुत दुःख होगा और लौट जाय! ऐसा आदमी कभी संन्यासी हो सकता है? कभी नहीं हो सकता, होने की जरूरत भी नहीं है। ऐसा आदमी संन्यासी ही है!

मां मर गई। पिता मर गये। मरघट से लौट रहे हैं महावीर। अपने बड़े भाई से कहा कि बात हुई थी माता-पिता से तो वे बोले थे जब तक वे हैं तब तक संन्यास न लूं, उन्हें दुःख होगा। अब संन्यास ले सकता हूं? घर लौट रहे हैं मरघट से। भाई ने कहा, तुम पागल हो गये हो? मां चली गई, पिता चले गये, हम अनाथ हो गए। और तुम भी छोड़ के चले जाओगे? ऐसा दुःख मैं न सह सकूंगा। महावीर चुप हो गये। फिर उन्होंने दुबारा बात न उठायी संन्यास की। बड़े अजीब संन्यासी रहे होंगे। इतना भी दुःख दूसरे को पहुंचे यह भी अर्थहीन मालूम हुआ होगा और ऐसे मोक्ष को भी लेके क्या करेंगे जिसमें किसी को दुःख देके जाना पड़ता हो। वे रुक गये।

लेकिन एक अजीब घटना घटी उस घर में। ऐसी घटना शायद पृथ्वी पर और कहीं कभी भी नहीं घटी। एक अजीब घटना घटी वर्ष दो वर्ष में। घर के लोगों को ऐसा लगने लगा कि महावीर हैं या नहीं; यह संदिग्ध हो गया। ये घर में उठते थे, बैठते थे, आते थे, जाते थे, खाते थे, पीते थे, सोते थे, मगर घर के लोगों को संदेह पैदा होने लगा कि वह हैं या नहीं हैं। उनकी उपस्थिति, अनुपस्थिति जैसी हो गई। उनका होना, न होने जैसा हो गया।

असल में दूसरे के प्रति जो दूसरों का बोध है अगर वह खो जाए तो दूसरे आदमी की उपस्थिति का पता लगना मुश्किल होने लगेगा। हमें अपनी उपस्थिति का पता करवाना पड़ता है। हजार ढंग से हम करवाते हैं। अगर

घर में पति आता है तो अपनी चाल से खबर करवाता है कि आ गया। अपनी आंख से खबर करवाना चाहता है कि मैं हूं। और मैं कौन हूं, यह साफ होना चाहिए। शिक्षक क्लास में आता है तो खबर करवा देता है। गुरु शिष्यों के बीच में आता है तो सब ढंग, सारी व्यवस्था खबर करवा देती है कि जानो कि मैं हूं।

महावीर अनुपस्थित जैसे हो गए। वे न किसी को देखते, न वे किसी को दिखाई पड़ते, ऐसे हो गए। वे चुपचाप कैसे घर में रहने लगे, चुपचाप कैसे गुजरने लगे, न वे किसी को बाधा देते न किसी की बाधा लेते। वे एक अर्थ में, जिसको जीवित मृत्यु कहें, उसमें प्रवेश कर गए। घर के लोगों ने एक दिन बैठक की, और सबने कहा अब उन्हें रोकना फिजूल है, क्योंकि वे हैं ही नहीं। रोकते किसको हो? हवा को मुट्ठी बांध के रोका जा सकता है? हां, पत्थर को रोका जा सकता है। पत्थर को मुट्ठी बांध के रोका जा सकता है, क्योंकि पत्थर पत्थर है, बहुत मजबूती से है। पत्थर कहता है, मैं हूं। लेकिन हवा को मुट्ठी बांध के रोको तो जितनी थी वह भी बाहर निकल जाती है। हवा है ही नहीं। पत्थर के अर्थों में नहीं है। इसलिए हवा को फेंक के मारा नहीं जा सकता किसी को। पत्थर को फेंक के मारा जा सकता है।

हवा का अस्तित्व बहुत नॉनवायलन्ट है। पत्थर का अस्तित्व बहुत वायलन्ट है। महावीर हवा की तरह हो गए, तो घर के लोगों ने कहा अब बेकार है। मुट्ठी बांध रहे हैं वह। आदमी जा चुका। और जितनी मुट्ठी बंधती है उतना वह आदमी बाहर होता जा रहा है। हम न रोकें। अब वह है ही नहीं। अब रोकना फिजूल ही है। रोकना भी तभी तक उचित है जब तक कोई रुकता हो या न रुकता हो। दो में से कुछ भी करता हो तो रोकने का अर्थ है। अब वह आदमी है ही नहीं, तो घर के लोगों ने महावीर से कहा कि अब आप जाना चाहें तो जा सकते हैं। और उन्होंने कहा, अब तो बहुत देर हो चुकी। मैं तो जा चुका हूं। अब मैं यहां नहीं हूं।

हिंसा की पहली गहरी चोट इन दो बातों से है जो ख्याल में ले लेनी चाहिए--क्या दूसरा है? जबतक दूसरा है तबतक हिंसा जारी रहेगी और दूसरे के कारण आप एक झूठा 'मैं,' झूठा अहंकार पैदा करेंगे जो आप नहीं हैं। लेकिन दूसरों से काम चलाने के लिए पैदा करना पड़ेगा।

अहंकार कामचलाऊ अस्तित्व है। हमें अपना कोई पता नहीं है कि मैं कौन हूं ? लेकिन हम कहते हैं कि 'मैं'। जिसे यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं वह भी कहे, मैं हूं, यह जरा ज्यादती है। क्योंकि होने का दावा तभी किया जा सकता है जब 'कौन होने' का पता हो।

मुझे पता नहीं है कि मैं कौन हूं ? लेकिन मैं कहता हूं 'मैं हूं'। यह मेरा मैं कहां से आया ? यह कहां से पैदा हुआ ? अगर यह मेरे ज्ञान से पैदा से हुआ है मैं, तब तो बड़े मजे की बात है। क्योंकि जिन्होंने भी स्वयं को जाना उन्होंने मैं कहना बंद कर दिया, जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने कहा, हम तो नहीं हैं। जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने स्वयं को खो दिया। जिन्होंने स्वयं को नहीं पाया, वह कहते हैं, मैं हूं। यह मैं कहां से आया ? यह आपके भीतर से नहीं आया। इसे कहना चाहिए सोशल बाई-प्रोडेक्ट, यह समाज ने पैदा करवा दिया। वह जो दूसरे हैं उनके साथ व्यवहार करने के लिए आपको एक शब्द खोज लेना पड़ा है कि मैं हूं, जैसे हमने नाम खोज लिया। बच्चा पैदा होता है बिना नाम के, नेमलेस। फिर हम उसको नाम दे देते हैं—राम, कृष्ण, कुछ भी नाम दे देते हैं। वह नाम बच्चे के भीतर से नहीं आता, समाज उसे दे देता है। फिर वह जिंदगी भर राम बना रहता है। वह इस एक शब्द के लिए लड़ेगा, अगर किसी ने गाली दे दी तो लड़ेगा।

रामतीर्थ अमरीका में थे। कुछ लोगों ने गालियां दीं तो वे हंसते हुए घर लौटे। और जब लोगों को पता चला, उनके मित्रों को कि उनको गालियां दी गईं तो वे बहुत नाराज हुए।

रामतीर्थ को हंसते हुए देखके उन्होंने पूछा कि आप पागल तो नहीं ? आप हंसते क्यों हैं ? गालियां दी गईं। रामतीर्थ ने कहा, मुझे कोई गाली देता तो मैं कोई जवाब देता। वे लोग राम को गाली दे रहे थे। राम से अपना क्या लेना-देना है ? इस नाम के बिना भी मैं हो सकता था। दूसरे नाम का भी हो सकता था। तीसरे नाम से भी हो सकता था। कोई ए. बी. सी. डी. को गाली दे, तो इससे मेरा लेना-देना क्या ? जब वे राम को गाली दे रहे थे तब हम भी भीतर बड़े खुश हो रहे थे कि देखो राम, कैसी गालियां पड़ रही हैं, आया मजा ? बनोगे राम तो गाली पड़ेगी। उन्होंने नाम दिया, उन्होंने गाली दी। हम बाहर हैं। नाम

भी उनका, गाली भी उनकी। वे खुद ही खेल रहे थे। कुछ लोगों का खेल होता है। कुछ लोग ताश के पत्ते खेलते हैं। दोनों तरफ से चाल चलते हैं। होना चाहिए उन्हें पागलखाने में, लेकिन होते वे बहुत बुद्धिमान लोग हैं। समाज दोहरी चाल चलता है--नाम भी देता है, गाली भी देता है। प्रशंसा भी देता है, निंदा भी देता है। आदर भी देता है, अपमान भी देता है। दोहरी चाल है समाज की और उस दोहरी चाल में आदमी बुरी तरह फंसता है। वह दूसरा भी झूठा है, और यह 'मैं'? यह मेरा 'मैं' भी झूठा है। यह दो झूठ एक साथ जिन्दा रहते हैं। जिस दिन दूसरा गिरता है उसी दिन मैं गिर जाता है। इधर मैं गिरता उधर दूसरा गिर जाता है।

मैं और तू के गिर जाने से जो शेष रह जाता, वह अहिंसा है। तो जब तक हम कह सकते हैं तू, तब तक हिंसा जारी रहेगी। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप 'मैं' शब्द का उपयोग नहीं करेंगे। करना ही पड़ेगा। महावीर भी करते हैं, लेकिन तब वह शब्द है, भाषा का खेल है। तब वह अस्तित्व नहीं है। तब 'मैं' सिर्फ एक शब्द है, जो उपयोगी है। बहुत से शब्द उपयोगी हैं लेकिन अस्तित्व में नहीं हैं, अस्तित्व से उनका कोई संबंध नहीं है।

ध्यान रहे इस मैं और तू के बीच जो उपद्रव पैदा हुआ है वह हिंसा है। मैं और तू के बीच पैदा हुआ उपद्रव होगा ही। दो झूठ खड़े हैं। दो झूठों के बीच जो भी होगा, वह उपद्रव ही होगा। हां, यह उपद्रव कभी प्रीतिपूर्ण हो सकता है, कभी अप्रीति पूर्ण हो सकता है। कभी यह उपद्रव प्रेम बन सकता है, यह बात दूसरी है। लेकिन जब तक 'मैं हूं' और जब तक 'तू है' तब तक हिंसा है। यह हिंसा का पहला सूक्ष्मतम रूप है। फिर हिंसा के बहुत रूप हैं जो इससे फैलते चले जाते है। उनको तो ऐसे ही गिना दूं, क्योंकि ओरिजनल सोर्स हमारे ख्याल में आ जाय फिर तो अनंत हिंसाएं हैं। इनका सारा हिसाब लगाना तो बहुत मुश्किल है।

अहिंसा तो एक है, हिंसाएं अनंत हैं। हिंसा मल्टी डायमेंशनल है। लेकिन निकलती है एक ही झरने से--वह मैं और तू का झरना, या कहें आत्मअज्ञान का झरना। महावीर को अगर कोई पूछे अहिंसा क्या है? तो वे कहेंगे आत्मज्ञान। हिंसा क्या है? तो वे कहेंगे आत्मअज्ञान।

अपने को ही न जानना हिंसा है। यह बड़ी अजीब बात है। हम तो समझते हैं कि दूसरों को दुःख देना हिंसा है। हम तो समझते हैं दूसरों को सुख देना

अहिंसा है। लेकिन ध्यान रहे; दूसरे को चाहे सुख दो, चाहे दुःख दो, हर हालत में दुःख ही पहुंचता है। देने की सब आकांक्षाएं व्यर्थ हो जाती हैं, क्योंकि दूसरे को सुख दिया ही नहीं जा सकता। सुख सिर्फ स्वयं को दिया जाता है। जिस दिन आप आप नहीं रह जाते, दूसरा नहीं रह जाता, उस दिन ही आपकी तरफ मुझसे सुख बह सकता है। और जब तक आपको सुख देने की कोशिश मैं करता हूं तब तक दुःख ही देता हूं, लेकिन हमें ख्याल में नहीं आता।

कभी आपने सोचा कि जिन जिन को आपने सुख दिया उन उन को दुःख पहुंचा! लोग रोज शिकायत करते हैं कि हम जिसको भी सुख देते हैं वह हमें सुख नहीं लौटाता। आप सुख देते होंगे, पहुंचता दुःख है। वह भी सुख देता है, पहुंचता दुःख है। बड़ी गलतफहमी होती है।

जो हम देते हैं वह पहुंचता नहीं, कभी नहीं पहुंचता। इसलिए जितने हम उनपर नाराज होते हैं जो हमें सुख देते हैं, उतने हम उनपर नाराज नहीं होते जो हमें दुःख देते हैं; क्योंकि कम से कम लेन-देन साफ साफ होता है कि वह दुःख दे रहा है। लेकिन जो हमें सुख देने की बात करते हैं और दुःख पहुंचता है, जैसे मैं किसी को प्रेम करने लगूं और कल उससे विवाह कर लूं, तो मैं उसे सुख देने की कोशिश करूंगा और दुःख पहुंचेगा।

किस पति ने किस पत्नी को कब सुख दिया? किस पत्नी ने किस पति को कब सुख दिया? लेकिन शायद मैं समझूंगा कि मैं सुख पहुंचा रहा हूं और दूसरा दुःख पहुंचा रहा है, वहीं भूल हो रही है। दूसरे को भी, वह सोच रहा है मैं सुख पहुंचा रहा हूं, दूसरा दुःख पहुंचा रहा है।

मनुष्य जीवन का सारा अंतरद्वन्द्व, सुख पहुंचाने की कोशिश और दुःख पहुंचाने की स्थिति से पैदा होता है। पहुंचाते सभी सुख हैं, पहुंचता सदा दुःख है। असल में दूसरे को हम सुख पहुंचा ही नहीं सकते, दूसरे के साथ अहिंसक हो ही नहीं सकते। यह इम्पोसीबिलिटी है। इसका कोई उपाय नहीं है कि हम दूसरे के साथ अहिंसक हो सकें।

हम दूसरे को फूल भी फेंककर मारेंगे, जब वह लगेगा, तो पत्थर हो जायेगा।

एक फकीर को सूली दी जा रही थी। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे थे, अंगारे फेंक रहे थे। मन्सूर लटका था सूली पर और लोग फेंक रहे थे। एक फकीर जुन्नेद नाम का उसमें मौजूद था। वह भी एक सूफी संत था। भीड़ बड़ी थी और सभी कुछ न कुछ फेंक रहे थे। जुन्नेद के मन में दुःख तो था कि

मन्सूर की हत्या ठीक नहीं हो रही है। लेकिन इतनी हिम्मत भी न थी कि कह सके कि यह ठीक नहीं हो रहा है। सब लोग कुछ फेंक रहे थे। जुन्नेद कुछ न फेंके तो शायद लोग उसको भी मारें कि तुम ऐसे क्यों खड़े हो? तो जुन्नेद ने एक फूल फेंककर मारा। सोचा उसने मन्सूर को लगेगा भी नहीं, मन्सूर समझेगा कि फूल फेंका। भीड़ भी समझेगी कुछ फेंका और खाली हाथ नहीं खड़ा रहा। लेकिन लोगों के पत्थर तो मन्सूर झेल गया, जुन्नेद का फूल न झेल सका।

जुन्नेद का फूल लगते ही मन्सूर तो धाड़ मार कर रोने लगा। अब तक हंस रहा था वह। जुन्नेद तो घबड़ा गया। जुन्नेद ने कहा, मैंने फूल फेंककर मारा और आप रोते हो और इतने पत्थर खा गये? मन्सूर ने कहा, फूल भी फेंककर मारा न? मारने से दुःख पहुंचता है। कोई पत्थर फेंके, सीधा लेन-देन है, लेकिन फूल मारते भी हो और छिपाते भी हो! मारना भी चाहते हो और बताना भी नहीं चाहते। चोट गहरी पहुंच गयी, जुन्नेद। और दूसरे तो नासमझ थे इन्हें माफ किया जा सकता था, पर तुम भी मारते हो! जुन्नेद ने कहा कि मैंने तो फूल फेंका। मन्सूर ने कहा, कुछ भी फेंको, चोट लग जाती है। असल में फेंकते ही हम तब हैं, जब दूसरा है, नहीं तो हम फेंकेंगे कहां?

ध्यान रहे भगवान की मूर्ति पर चढ़ाये गये फूल भी हिंसा हो जाते हैं, क्योंकि हम दूसरे को स्वीकार कर रहे हैं। भक्त वह नहीं है जिसने भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ाये। भक्त वह है जो खोजने निकला और जिसने भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं पाया।

फूल में भी उसको पाया और पत्थर में भी उसको पाया। चढ़ाने वाले में भी उसे पाया, चढ़ने वाले में भी उसे पाया और वह पूछने लगा कि किसको चढ़ाऊं और क्या चढ़ाऊं? किसके लिए चढ़ाऊं और कैसे चढ़ाऊं? कौन चढ़ाये?

जब कोई अहिंसा को उपलब्ध होता है, तो दूसरा मिट जाता है। और दूसरा कब मिटता है? जब कोई स्वयं को जानता है, तब दूसरा मिटता है। उसके पहले नहीं मिटता। फिर हमारी बहुत तरह की हिंसा पैदा होती चली जाती है। हम चलते हैं, तो हिंसा है, हम उठते हैं, तो हिंसा है। हम बैठते हैं, तो हिंसा है। हम बोलते हैं, तो हिंसा है। हम देखते हैं, तो हिंसा है।

इसलिए इस ख्याल में कोई न पड़े कि अगर हमने बहुत स्थूल हिंसाएं रोक लीं तो कोई फर्क हो जायेगा। कोई आदमी मांसाहार न करे, अच्छा है न

करे, लेकिन इस भ्रम में न पड़े वह, कि अहिंसा हो गयी। इतना ही कहे कि थोड़ी सी हिंसा रुकी। लेकिन ध्यान रहे यह हिंसा किसी दूसरी जगह से तो निकलना शुरू न हो जायगी। यह निकलेगी, यह मार्ग खोजेगी क्योंकि हिंसा मिटी नहीं है, वह मिट नहीं सकती, इस भांति नहीं मिट सकती।

अगर मांस खाना छोड़ दिया है, तो अक्सर आप देखेंगे कि मांसाहारी जितना भला आदमी मालूम पड़ेगा, और अमांसाहारी उतना भला आदमी नहीं मालूम पड़ेगा। यह अजीब सी बात है, बड़ी दुःखद है। साधारणतः जो शराब पी लेता है, सिगरेट पी लेता है, होटल में खाना खा लेता है, वह थोड़ा सा विनम्र आदमी मालूम पड़ेगा। जो सिगरेट नहीं पीता, मांस नहीं खाता, होटल में नहीं खाता, ऐसा जीता है, ऐसा नहीं जीता, वह अविनम्र और कठोर होता चला जायेगा।

जो हिंसा उसकी निकलती नहीं है वह इकट्ठी होकर उसके भीतर संग्रहीत होने लगती है। इसलिए आमतौर से जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं वह अच्छे सिद्ध नहीं होते। दुर्घटना है यह। बुरा आदमी कई बार बहुत अच्छा सिद्ध होता है और अच्छे आदमी अक्सर बुरे सिद्ध होते हैं। अच्छे आदमी के साथ दोस्ती तो मुश्किल ही है, बुरे आदमी के साथ ही दोस्ती हो सकती है। अगर, दोस्ती के लिए भी थोड़ा सा विनम्र दिल चाहिए—अच्छे आदमी के पास वह नहीं रह जाता। इसलिए महात्माओं से दोस्ती बहुत मुश्किल है। महात्माओं की दोस्ती भी मुश्किल है तो औरों की तो बहुत ही मुश्किल है।

आप महात्मा के अनुयायी हो सकते हैं या दुश्मन हो सकते हैं, दोस्त नहीं हो सकते। अच्छे आदमी के पास दोस्ती खो जाती है, कठोर हो जाता है। हाथ फैलाता है जो वह दोस्ती के लिए वह खत्म हो जाता है। अक्सर जो समाज सहज जीते हैं, बुरे और भले का बहुत फर्क नहीं करते वहां बड़ी मात्रा में भले आदमी मिल जाते हैं। जो समाज असहज जीते हैं, बुरे-भले का बहुत फर्क करते हैं, वहां अच्छा आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है; क्योंकि बुराई बाहर से तो रुक जाती है और उसके भीतर इक्ट्ठी होती जाती है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि ऋषि-मुनियों से ज्यादा क्रोधी आदमी को खोजना कठिन हो जाता है। दुर्वासा ऋषि-मुनि में ही पैदा हो सकता है कहीं और नहीं पैदा हो सकता।

इधर मैं निरंतर सोचता रहा तो मेरे ख्याल में आया कि अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पीता, थोड़ा मांस खा लेता, थोड़ा बे वक्त जग जाता, थोड़ा

जाकर कहीं नृत्यगृह में नाच कर लेता, तो शायद दुनिया में करोड़ों आदमी मरने से बच जाते। लेकिन हिटलर सिगरेट नहीं पीता, मांस नहीं खाता, चाय नहीं पीता। पक्का शाकाहारी, प्युरीटन, शुद्धतावादी है। नियम से सोता, नियम से उठता—ब्रह्म मुहूर्त में। सख्त नीतिवादी आदमी, चारों तरफ से सख्त। सारी शक्ति इकट्ठी हो गयी। कई बार ऐसा लगता है कि थोड़े अच्छे आदमी भी थोड़े से, जिसको इनोसेन्ट-नॉनसेन्स कहें, निर्दोष बेवकूफियां कहें, ऐसे थोड़े से काम करें तो विनम्र और सरल हो जाते हैं।

लेकिन अच्छे आदमी सदा ही अच्छा करने की क्यों चेष्टा करते हैं? अच्छे होना बहुत दूसरी बात है, अच्छा करना बहुत दूसरी बात है। अच्छा करने से कोई कभी अच्छा नहीं होता। अच्छा होने से अच्छा करना निकल सकता है, वह बहुत दूसरी बात है, लेकिन हम सदा उल्टा पकड़ते हैं।

हमने देखा महावीर को कि महावीर मांस नहीं खाते, तो हमने सोचा हम भी मांस नहीं खायेंगे तो महावीर जैसे अच्छे हो जायेंगे। भूल हो गयी, तर्क गलत हो गया। कहीं गणित चूक गया। महावीर कुछ हो गये इसलिए मांस खाना असंभव है। मांस न खाने से कोई महावीर नहीं हो सकता। और अगर मांस न खाने से कोई महावीर हो सके तो महावीर होना दो कौड़ी का हो गया। जितनी कीमत मांस की उतनी ही कीमत महावीर की हो गयी। उससे ज्यादा न रही। इतना सस्ता मामला नहीं है। धर्म इतना सस्ता नहीं है कि हम यह नहीं खायेंगे तो हम धार्मिक हो जायेंगे, कि हम यह न पियेंगे तो धार्मिक हो जायेंगे, कि हम रात में पानी न पियेंगे तो धार्मिक हो जायेंगे।

मैं नहीं कहता हूं कि आप पियें। ध्यान रहे, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि रात में पानी पियें। पीने से भी धार्मिक नहीं हो जायेंगे, नहीं पीते हैं, भला है; लेकिन इस भूल में मत पड़ना कि धार्मिक हो गये। अहिंसक हो गये। वह बड़ा खतरा है। बहुत सस्ता काम किया और बहुत महंगा विश्वास पैदा हो गया। न कुछ किया तो सब कुछ पाने का ख्याल पैदा हो गया। कंकर-पत्थर गिने और समझा कि हीरे-जवाहरात हाथ आ गये। यह भूल हो गयी अहिंसा के साथ। यह भूल बहुत गहरी हो गयी। क्योंकि अहिंसा को हमने पकड़ा है आचरण से—गहरे से नहीं, अध्यात्म से नहीं। आचरण से अहिंसा पकड़ी जायेगी तो खतरनाक है और जब आचरण से कोई अहिंसा को पकड़ता है तब सूक्ष्म रूप से हिंसक होता चला जाता है।

इस संबंध में एक बात और, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। जब हिंसा सूक्ष्म बनती है तो पहचान के बाहर हो जाती है। मैं आपको कई तरह से

दबा सकता हूं। एक दबाना हिटलर का भी है, आपकी छाती पर छुरी रख देगा। एक दबाना महात्मा का भी होता है, छाती पर छुरी नहीं रखेगा अपनी छाती पर छुरी रख लेगा।

एक दबाना मेरा यह हो सकता है कि मार डालूंगा अगर मेरी बात न मानी। और एक दबाना यह हो सकता है कि मर जाऊंगा अगर मेरी बात न मानी। लेकिन दबाना जारी है। अच्छे लोग अच्छे ढंग से दबाते हैं, बुरे लोग बुरे ढंग से दबाते हैं। लेकिन बुरे लोग फिर भी सिन्सीयर हैं, सीधे हैं, बात जानते हैं कि हाथ में छुरी है। अच्छे आदमी जानते हैं कि हाथ में माला है, लेकिन माला से भी फांसी लगायी जा सकती है इसका बोध नहीं होता। और अगर हिंसा सूक्ष्म हो तो दो रूप लेती है–

एक तो दूसरे की तरफ अहिंसा का चेहरा बनाती है, हिंसा का काम करती है और दूसरी तरफ अगर हिंसा और भी सूक्ष्म हो जाय तो अपने को भी सताना शुरू कर देती है। मजा यह है कि अहिंसा दूसरे को भी नहीं सता सकती, हिंसा अंततः अपने को भी सता सकती है। तो हिंसा अंत में सेल्फ टार्चर भी बन जाती है।

जैसे मैंने कहा सैडिस्ट दो तरह के लोग होते हैं। आमतौर से दो ही तरह के लोग होते हैं तीसरी तरह का आदमी कभी कभी होता है। कभी कभी कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई जीसस होता है। आमतौर से दो तरह के आदमी होते हैं, दूसरों को सताने वाले लोग और अपने को सताने वाले लोग, परपीड़क और आत्मपीड़क। जैसे मैंने कहा, एक आदमी की बात, कि वह प्रेम करेगा तो दूसरे को सतायेगा। वैसा एक आदमी हुआ मैसोच वह अपने को ही सतायेगा। जब तक सुबह से उठकर अपने को दस-पचास कोड़े न मार ले तब तक दिन में उसको ताजगी न आयेगी। तो दुनिया में कोड़े मारने वाले संन्यासी हुए हैं, कांटों पर लेटने वाले संन्यासी हुए हैं, कांटों के जूते पहनने वाले संन्यासी हुए हैं, घाव बनाने वाले संन्यासी हुए हैं। ये किस तरह के लोग है? यह संन्यास हुआ? यह धर्म हुआ?

एक आदमी दूसरे को भूखा मारे तो हम कहेंगे अधार्मिक और एक आदमी अपने को भूखा मारे तो हम जुलूस निकालेंगे। बड़े अधर्म की बात है! क्या दूसरे को सताना अधार्मिकता और अपने को सताना धार्मिक हो सकता है? सताना अगर अधार्मिक है तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसको सताया? हां, दूसरे को सताते तो दूसरा रक्षा भी कर सकता था, अपने को सतायेंगे तो रक्षा का भी

उपाय नहीं। अपने को सताना बहुत आसान है, दूसरे को सताने में हजार तरह की कठिनाइयां हैं। समाज है, कानून है, पुलिस है, अदालत है। अभी तक अपने को सताने के खिलाफ न कोई कानून है, न कोई पुलिस, न कोई अदालत! होनी तो चाहिए, क्योंकि कुछ दुष्ट अपने को सताते हैं। जिस दिन अच्छी दुनिया होगी उस दिन इसके लिए भी अदालत होगी। और ध्यान रहे, जो अपने को सताता है, वह सब तरह से दूसरे को सतायेगा ही, क्योंकि जो अपने को नहीं छोड़ता है, वह दूसरे को कैसे छोड़ सकता है? यह असंभव है, यह बहुत असंभव है। अगर मैंने अपने को भूखा रखकर जुलूस निकलवा लिया तो ध्यान रखिये मैं आपको भी भूखा रखवाने के सब उपाय करूंगा और जब तक आपका जुलूस न निकल जाय तब तक चैन न लूंगा। हिंसा और गहरी और सूक्ष्म हो जाती है तो मैसोचिस्ट बन जाती है – आत्मपीड़क बन जाती है।

महावीर की मूर्ति देखी? क्या यह मालूम पड़ता है कि इसने खुद को सताया होगा? इस आदमी का शरीर देखा? इस आदमी की शान देखी? इस आदमी का सौंदर्य देखा? क्या ऐसा लगता है कि इसने खुद को सताया होगा? कथाएं झूठी होंगी या फिर यह मूर्ति झूठी। इस आदमी ने अपने को सताया नहीं है। महावीर जैसी सुन्दर प्रतिमा मैं समझता हूं, किसी की भी नहीं है। मैं तो ऐसा समझता हूं निरंतर कि महावीर का नग्न हो जाने में उनका सौन्दर्य भी कारण है। असल में कुरूप आदमी नग्न नहीं हो सकता। कुरूप आदमी वस्त्र को सदा संभाल के रखेगा, क्योंकि वस्त्रों में सौंदर्य को कोई नहीं छिपाता, वस्त्रों में सिर्फ कुरूपता छिपाई जाती है।

जो जो अंग सुन्दर होते हैं वह तो हम वस्त्र के बाहर कर देते हैं, जो जो अंग कुरूप होते हैं उन्हें हम वस्त्रों में छिपा लेते हैं। महावीर सर्वांग सुन्दर मालूम होते हैं। ऐसे अनुपात वाला शरीर मुश्किल से दिखाई पडता है। इस आदमी की जितनी सताने की कथाएं हैं, मुझे नहीं लगतीं, इस आदमी पर घटीं अन्यथा हमें मूर्ति बदल देनी चाहिए। यह मूर्ति सच्ची मालूम नहीं होती। मैं मानता हूं कि मूर्ति सच्ची है, कथाएं झूठी हैं। असल में कथाएं मैसोचिस्ट ने लिखी हैं। कथाएं उन्होंने लिखी हैं जो स्वयं को सताने के लिए उत्प्रेरित हैं, वे कथाएं ढाल रहे हैं। वे महावीर के आनन्द को भी दुःख बना रहे हैं। वे महावीर की मौज को भी त्याग बना रहे हैं। वे महावीर के भोग को भी, परम भोग को, त्याग की व्याख्या दे रहे हैं। मेरी दृष्टि में महावीर महल को छोड़ते हैं, क्योंकि

बड़ा महल उन्हें दिखाई पड़ गया। कथाकारों की दृष्टि में वे सिर्फ महल छोड़ते हैं, कोई बड़ा महल दिखाई नहीं पड़ता। मैं मानता हूं कि महावीर सोने को छोड़ते हैं, क्योंकि वह मिट्टी हो गया और परम सुवर्ण उपलब्ध हो गया।

अगर महावीर किसी दिन खाना नहीं खाते तो वह अनशन नहीं है, उपवास है। अनशन का मतलब है भूखे मरना। उपवास का मतलब है इतने आनन्द में होना कि भूख का पता भी न चले। वह बहुत और बात है। वह बात ही और है। उपवास शब्द आप सुनते हैं। उपवास शब्द में रोटी, भोजन, खाना – पीना कुछ भी नहीं आता। उस शब्द में ही नहीं है वह। उपवास का मतलब है भीतर और भीतर, पास और पास होना। टुबी नीयरर टु वन सेल्फ। उपवास का इतना ही मतलब है, अपने पास होना। जब कोई आदमी बहुत गहरे में भीतर अपने पास होता है तो शरीर के पास नहीं हो पाता, इसलिए शरीर की भूख-प्यास का उसे स्मरण नहीं होता। शरीर के पास होंगे तभी तो ख्याल आयेगा!

जब ध्यान बहुत भीतर है, तो शरीर से ध्यान चूक जाता है। उपवास का मतलब है, ध्यान की अन्तर्यात्रा। उपवास, अनशन नहीं है; लेकिन मैसोचिस्ट उपवास को अनशन बना देगा। वह कहेगा, बिना भूखे रहे आत्मा नहीं मिल सकती। भूखे रहने से आत्मा का मिलने के क्या संबंध हो सकता है?

क्या आत्मा भूख को प्रेम करती है? भूखे रहने से आत्मा का मिलने से कोई संबंध नहीं है। हां, आत्मा के मिलने का क्षण भूखा रहना हो सकता है। कभी आपने ख्याल किया हो, न किया तो अब करना, कि जिस दिन आप आनंदित होंगे उस दिन भोजन ज्यादा न कर पायेंगे।

अगर कोई प्रियजन घर में आ जाय और आप बहुत आनन्दित हों तो भोजन कम हो जायेगा। आनन्द इतना भर देता है, इट इज सो फुल फिलिंग, कि भीतर कुछ खाली नहीं रह जाता जिसमें भोजन डालो। महावीर ने जिस आनन्द को जाना है वह तो परम आनन्द है, वह इतना भर देता है, इतना भर देता है कि भीतर जगह खाली नहीं रह जाती।

दुःखी आदमी ज्यादा खाना खाते हैं। ध्यान रहे: जिस दिन आप दुःख में होंगे उस दिन आप ज्यादा खाना खा जायेंगे, क्योंकि आप खाली होंगे। तो जो आदमी जितना दुःखी है, उतना ज्यादा खाना खाने लगेगा।

असल में बचपन में बच्चे को पहली बार ही यह बोध हो जाता है कि सुख और खाने में कोई संबंध है। मां जब बच्चे को पूरा प्रेम करती है तो

दूध भी देती है और उस प्रेम में उसे आनन्द भी मिलता है। जिस बच्चे को पक्का आश्वासन है कि जब उसे दूध चाहिए मिल जायेगा, वह बच्चा ज्यादा दूध नहीं पीता। मां परेशान रहती है कि ज्यादा पिलाये। वह ज्यादा नहीं पीता, क्योंकि वह जानता है जब भी चाहिए मिल जायेगा। लेकिन अगर नर्स हो दूध पिलाने वाली, और कई माताएं नर्स ही हैं, उन्होंने बच्चे को पेट में लिया उससे कोई फर्क नहीं पड़ता! अगर मां दूध पिलाने से दुःखी होती है और बच्चे को जबरदस्ती दूध से अलग करती है तो बच्चा ज्यादा पीने लगेगा, क्योंकि भविष्य का भरोसा नहीं है। बच्चा चिन्तित है, एंक्जाइटी से भरा हुआ है। इसलिए जहां जितनी ज्यादा चिंता होगी, वहां उतना ही भोजन ज्यादा शुरू हो जायेगा। चिन्तित लोग ज्यादा खाना खाने लगते हैं।

चिन्तित लोग खाली हो जाते हैं। चिन्ता एक तरह की एम्पटीनेस है। वह भीतर सब खाली कर देती है। यह आदमी ज्यादा खाने लगता है। ज्यादा खाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि यह आदमी दुखी है और कम खाना इस बात की सूचना है कि यह आदमी सुखी है।

आनन्द तो और आगे की बात है। जब कोई आनन्द से भर जाता है तो महीनों भी बीत सकते हैं। और ध्यान रहे, महावीर के महीनों उपवास में बीते। महीनों उन्होंने भोजन नहीं किया, ऐसा नहीं कहूंगा—भोजन नहीं कर पाये, ऐसा कहूंगा। ऐसे भरे हुए थे! महीना इतना आनन्द से बीता हो तो महावीर के शरीर पर तो नुकसान होना ही चाहिए भोजन के न होने का। यह बड़े मजे की बात है कि शरीर को नुकसान भोजन के न होने से इतना नहीं पहुंचता जितना नहीं मिला इससे पहुंचता है। गहरे में शरीर को जो नुकसान पहुंचते हैं वह मनोदशाओं से पहुंचते हैं।

अभी यूरोप में एक महिला थी और कुछ दिनों पहले बंगाल में एक महिला थी। बंगाल में प्यारी बाई करके एक महिला थी। जिसने तीस साल, पूरे तीस साल भोजन नहीं किया और शरीर को कोई नुकसान ही नहीं पहुंचा। और यह महावीर की बात तो पुरानी हो गयी इसलिए इसकी मेडीकल परीक्षा का कोई उपाय नहीं है। लेकिन यह प्यारी बाई का, सब तरह से मेडीकल परीक्षण हुआ। तीस साल उसने कोई भोजन नहीं किया। उसके पेट में कुछ दाना नहीं गया। उसकी सारी अंतड़ियां सिकुड़कर सूख गयीं। लेकिन उसके स्वास्थ्य को कोई फर्क नहीं पहुंचा। क्या हुआ? मिरेकल हुआ! एक चमत्कार हुआ! इसे क्या हो गया? मेडीकल साइन्स को समझना मुश्किल हो गया कि इसे क्या हुआ।

असल में वह इतनी आनन्दित थी कि हम सोच भी नहीं सकते कि आनन्द भी भोजन बन सकता है। हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि भोजन आनन्द बनता है। दूसरा छोर हमें पता नहीं कि आनन्द भी भोजन बन सकता है। हम सिर्फ एक छोर जानते हैं कि भोजन आनन्द बनता है। दूसरा छोर भी है। सब चीजें कनवर्टीबल हैं। अगर पानी बरफ बन सकता है, तो बरफ पानी बन सकता है। अगर एनर्जी मैटर बन सकती है, तो मैटर एनर्जी बन सकता है।

अगर भोजन आनन्द बनता है तो आनन्द भोजन बन सकता है। बना है। प्यारी बाई तीस साल तक भूखे रहकर बता गयी कि भूखे महावीर ने अगर बारह साल में कुल ३६५ दिन भोजन किया किया होगा, तो यह अनशन नहीं था अन्यथा शरीर चला गया होता। आनन्द भोजन बन गया !

अभी यूरोप में एक महिला थी। उस पर तो और भी प्रयोग हो सके। वह परम स्वस्थ थी, असाधारण रूप से स्वस्थ और वर्षों उसने भोजन नहीं किया। क्या हुआ ? वह कृष्ण की दीवानी नहीं थी। यह प्यारी बाई कृष्ण की दीवानी थी। वह क्राइस्ट की दीवानी थी। और प्यारी बाई से भी ज्यादा महत्वपूर्ण घटना उसकी जिन्दगी में थी। क्योंकि हर शुक्रवार (को जब क्राइस्ट को सूली लगी) तब उसके दोनों हाथों से खून बहने लगता था बिना कोई चोट पहुंचाये। इतनी एक हो गयी थी एम्पथी में कि वह ऐसा नहीं बोलती थी कि जीसस ने कहा, वह ऐसा बोलती थी कि मैंने कहा था—"जब मुझे सूली लगी थी तो मैं ने कहा था इन सबको माफ कर दो क्योंकि ये निर्दोष हैं और नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।" तो ठीक शुक्रवार के दिन, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ फैल जाते, आंखें बद हो जातीं और उसकी हाथ की साबित गदियों में से खून गिरना शुरू हो जाता। शुक्रवार की रात घाव विदा हो जाते। खून बन्द हो जाता। दूसरे दिन हाथ बिलकुल ठीक हो जाते। और सैकड़ों बार उसके हाथ से खून बहा, और भोजन उसका बन्द। तब तो बड़ी मुश्किल हो गयी लेकिन उसका वजन कम न हुआ। तो क्या हुआ ये ?

एक बहुत कीमती बात आपसे कहना चाहता हूं। वह यह कि कुछ सूत्र हैं, कुछ राज हैं, जिनके द्वारा आनन्द भी भोजन बन जाता है। लेकिन वह उपवास है--वह अनशन नहीं है।

अहिंसा न तो किसी और को सताती है, न स्वयं को सताती है। अहिंसा सताती ही नहीं। हिंसा ही सताती है। हिंसा के गृहस्थ रूप हैं, हिंसा के संन्यस्त रूप हैं,

हिंसा के अच्छे रूप हैं, बुरे रूप हैं। और अगर हम दोनों से सजग हो जायं तो शायद अहिंसा की खोज हो सकती है।

चार दिन तक एक एक सूत्र की खोज आपके साथ करना चाहूंगा और पांचवें दिन, अंतिम दिन, इन चारों सूत्रों में कैसे उतरा जा सकता है उसकी बात कहूंगा। अहिंसा, अपरिग्रह, अचोरी, अकाम—यह चार परिणाम हैं और पांचवां सूत्र अप्रमाद, अवेयरनेस इन परिणामों तक पहुंचने का मार्ग है।

जो मिलेगा, वह है सत्य। जो खिलेगा जीवन में, जिसकी फ्लावरिंग होगी, वह है ब्रह्मचर्य।

मेरी बात इतनी शांति और प्रेम से सुनी इससे बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

★

आचार्य श्री का आगामी कार्यक्रम

१३ मार्च से २३ मार्च : गीता-प्रवचन : **क्रास मैदान, बम्बई :**
संयोजक : जीवन जागृति केंद्र, बम्बई

४ अप्रैल से १० अप्रैल : साधना-शिविर : **माऊंट आबू :**
संयोजक : जीवन जागृति केंद्र,
खाडिया चार रास्ता, अहमदाबाद

१ मई से १० मई : गीता-प्रवचन : **अहमदाबाद :**
संयोजक : जीवन जागृति केंद्र,
अहमदाबाद

२० मई से ३१ मई : गीता-प्रवचन : **क्रास मैदान, बम्बई :**
संयोजक : जीवन जागृति केंद्र, बम्बई

प्रेमी पिपासुओं से–

[आचार्यश्री रजनीश के अमृत-पत्र]

पिछले जन्मों के वायदे

मेरे प्रिय,

प्रेम! ऐसा विगत जन्म में दिया गया अनेक मित्रों को मेरा आश्वासन था कि जब सत्य मिले तो मैं उन्हें खबर कर दूंगा।

वह खबर मैं कर चुका।

भारत में मेरी यात्राएं इसलिए अब समाप्त ही हैं।

निश्चय ही भारतेतर मित्र भी कुछ हैं-उनसे संबंध-सेतु बना रहा हूं।

यद्यपि, मित्रों को लिए गये वायदे की कुछ भी खबर नहीं है–आपको ही कहां है–लेकिन, मुझे जो ज्ञात है उसे करना अनिवार्य है।

अब साधारणत: मैं एक ही जगह रुकूंगा।

इससे साधकों पर ज्यादा ध्यान भी दे सकूंगा।

और जिन्हें सच ही जरूरत है, उनके ज्यादा काम भी आ सकूंगा।

वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-७१

(प्रति : श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, पथ १, राजेन्द्रनगर, पटना)

★

अब गहन कार्य में लगता हूं

मेरे प्रिय,

प्रेम! मेरी यात्राएं करीब करीब पूरी हो गयी हैं।

जिनसे किसी जन्म में किये गये वायदे थे, वे मैंने निभा दिये हैं।

अब तो मैं एक ही जगह रुकूंगा।

जिन्हें आना है वे आ जावेंगे।

वे सदा ही आ जाते हैं।

और शायद इस भांति मैं उनके ज्यादा काम भी आ सकूं **जिन्हें कि वस्तुतः मेरी जरूरत है।**

विस्तृत कार्य कर चुका--अब गहन कार्य में लगता हूं।

पुकार आया गांव-गांव लोगों को, अब उनके आने की प्रतीक्षा करता हूं।

ऐसा ही है आदेश अब अन्तर का।

और उस आदेश से अन्यथा न तो मैंने कभी कुछ किया है, न कर ही सकता हूं।

वहां सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-७१

(प्रतिः श्री हीरालाल जी कोठारी, दांत भैरू, उदयपुर)

★

प्यासों को ही कुआं तक आना होगा

मेरे प्रिय,

प्रेम ! अब तक तो कुआं प्यासों तक जाता रहा; लेकिन शायद अब ऐसा न हो सकेगा।

अब तो प्यासों को ही कुआं तक आना होगा।

और शायद यही नियमानुसार भी है।

नहीं क्या ?

मैं यात्राएं करीब करीब बन्द कर रहा हूं।

खबर पहुंचा दी गयी है—अब जिसे खोजना है वह मुझे खोज लेगा।

और जिसे नहीं खोजना है मैंने भलीभांति उसके द्वार पर भी दस्तक देकर देख ली है।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-७१

(प्रतिः श्री ओमप्रकाश अग्रवाल, एन. के. १७५, चरणजीतपुर, जालंधर)

सूक्ष्म और अदृश्य कार्य

मेरे प्रिय,

प्रेम ! बाह्य यात्रायें बंद कर रहा हूँ।

लेकिन, जो सच ही पुकारेंगे उनके लिए अन्तर्यात्राओं के द्वार भी खोल रहा हूँ।

नहीं—वंचित कोई भी नहीं हो सकेगा।

तुम्हारे हृदय में आ जाऊँगा।

और तुमसे बोलूंगा।

और शायद जो तुम बाह्य-वाणी से कभी भी न समझ पाये थे, वह इस अन्तर्वाणी से समझ पाओगे।

सूक्ष्म को बहुत कहा स्थूल से।

अब सूक्ष्म को सूक्ष्म से ही कहना है।

रजनीश के प्रणाम

१६-२-१९७१

(प्रति : श्री राजेन्द्र, लुधियाना, पंजाब)

★

परमात्मा ही परमात्मा

•

ब्रह्मदत्त

'...बस।---अब विश्रांति में चले जायं।---शांत हो जायं।---इस तरह हो जायं कि जैसे तुम हो ही नहीं।---जैसे बीज मिट्टी में मिल गया।---जैसे बूंद सागर में खो गयी।---सब कुछ शांत हो गया।' ट्रैवलर्स-लॉज की वाटिका में परमपूज्य की परमपुनीत वाणी एक छोर से दूसरे छोर तक गूंज गयी। सब कुछ शांत हो गया। सभी साधक निश्चल हो गये। कहीं कोई आवाज नहीं। विचित्र सन्नाटा चारों ओर से घिर आया। एकबारगी तो ऐसा लगा कि हवाएं भी शांत हो गयी हैं। श्वास तक रुक गयी है।

एकाएक किसी वृक्ष पर कोई पक्षी बोला। हवाएं सनसनायीं। सन्नाटा मुखर हो उठा। कहीं कोई हंसा। कहीं कोई चीखा। धर्मेन्दु की मनोहारी वाणी वातावरण में तैर चली!--

'देखें, अपने भीतर पहचानें।---प्रकाश ही प्रकाश।---आनन्द ही आनन्द।---शांति ही शांति।---देखें, देखें अपने भीतर।---भीतर भी वही है---बाहर भी वही है---सब ओर वही है।---वही है, वही है।---उसके सिवा कुछ भी नहीं।---वृक्षों में वही, पहाड़ों में वही, सूरज में वही, चांद-तारों में वही।---कण-कण में वही है।---देखें, देखें अपने भीतर।---प्रकाश ही प्रकाश।'

राम के बदन में एक सुरसुराहट-सी उठी। उसे लगा उसके भीतर कहीं

कुछ भक् से जल उठा है।---प्रकाश की नदी बह चली। आपादमस्तक वह उस अलौकिक प्रकाश से सराबोर हो गया।

'देखें, पहचानें उसे।---प्रकाश ही प्रकाश।---आनन्द ही आनन्द।---पुलक-पुलक से भर जायं।---पी जायं, पी जायं उस आनन्द को।---प्रकाश ही प्रकाश।---आनन्द ही आनन्द।---' योगेश्वर का सम्मोहन बिखेरता स्वर वायु में पुनः गुंजायमान हो गया। किसी साधिका के कंठ से एक शास्त्रीय गीत की कड़ी फूटी। न जाने बगीचे के किस छोर से हंसी की एक पुलकायमान लहर उठी।

राम को लगा उसके अंग-अंग आनन्द से कमल की तरह खिलते जा रहे हैं।

'---चारों तरफ परमात्मा है।---परमात्मा के सिवा कुछ भी नहीं है।---तुम तो खो गये।---तुम तो मिट गये।---सिर्फ परमात्मा ही शेष है।---परमात्मा ही परमात्मा।---परमात्मा के सिवा कुछ भी नहीं बचा।---कुछ भी नहीं बचा।---परमात्मा ही परमात्मा।---देखें, पहचानें उसे।---आनन्द ही आनन्द।---प्रकाश ही प्रकाश।---परमात्मा ही परमात्मा।' परमपिता की मधुरिमा उड़ेलती वाणी वातावरण में घुलती रही।

दस मिनट कब बीत गये, पता ही न चला। फिर जैसे कोई गैस भरे गुब्बारे की डोर खींच ले और गुब्बारा धीरे-धीरे नीचे उतर आये। आचार्य श्री बोले, 'अब हमारी ध्यान की बैठक समाप्त होती है। धीरे-धीरे ध्यान से वापस लौट आयें।---अब दोनों हाथ जोड़ लें। प्रभु के चरणों में गिर जायं। हर ओर उसी के चरण हैं। फेंक दें अपने आपको उसके चरणों में। ---धन्यवाद से भर जायं। धन्यवाद दे दें उसे।---प्रभु! तेरी अनुकंपा अपार है, प्रभु! तेरी अनुकंपा अपार है, प्रभु! तेरी अनुकंपा अपार है!'

राम ने धीरे-धीरे आंखें खोलीं। दो-चार लंबी-लंबी श्वासों से अपने भीतर प्राणों का संचार किया और उठ खड़ा हुआ। वाटिका में चारों ओर साधक सरोवर में खिले कमल पुष्पों की तरह बेतरतीब फैले हुए थे। सरोवर को घेर कर जैसे कंटीली, नुकीली घास खड़ी होती है वैसे ही बगीचे को घेरकर तमाशाई लोग खड़े थे। ढेर के ढेर। बेतरतीब।

राम ने आगे बढ़कर अपने आपको उसके चरणों में फेंक दिया जिसके चरण हर ओर हैं। कुछ क्षणों बाद वह उठा और बिना किसी से कुछ बोले धीरे-धीरे ट्रैवलर्स-लॉज के अहाते से बाहर निकल गया।

सड़क पर आते ही उसे सर्दी महसूस हुई। उसने रुककर कंधे पर लटक रहे स्वेटर को पहना और फिर सीधी, शांत, सड़क पर दोनों कंधे झुकाये चल पड़ा। सड़क की बायीं ओर, नीचे, ब्यास नदी हहराकर बह रही थी। किसी वृक्ष पर कोई पक्षी बोला। राम के कानों में मनमोहन की मोहिनी छिड़कती वाणी वर्षा की आल्हादक फुहारों की तरह भर उठी। – – – परमात्मा ही परमात्मा। – – – सिर्फ परमात्मा है! – – – परमात्मा के सिवा कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं। – – – सब ओर परमात्मा है। – – – परमात्मा ही परमात्मा है। – – –

नीचे परमात्मा बह रहा है। उसने सोचा। वृक्ष पर परमात्मा बोल रहा है। वह हंसा। एक अलौकिक प्रकाश से उसका चेहरा दमक उठा। उसके

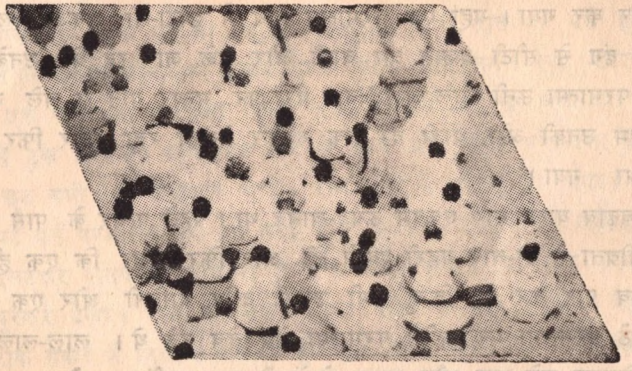

होंठ हौले से फड़के – परमात्मा ही परमात्मा। जैसे कि उसने किसी मंत्र का उच्चारण किया हो। और फिर एकाएक सब कुछ किसी चित्रपट की भांति परिवर्तित हो गया। चारों ओर परमात्मा का सागर लहराने लगा। अत्यंत प्रमुदित हो, आश्चर्य से परिपूरित हो, उसने सिर उठाकर सब ओर देखना प्रारंभ किया। – – –

आगे मोड़ पर, परमात्मा सड़क दुरुस्ती के काम में लगे थे। कहीं वो लकड़ियां जलाकर तारकोल पिघला रहे थे, कहीं सड़क बुहारकर पत्थर बिछा रहे थे। कहीं बिछे हुए पत्थरों पर गर्म-गर्म अलकतरा चुआ रहे थे, तो कहीं कहीं बैठकर सुस्ता रहे थे। राम ने उन्हें जैसे जीवन में पहली बार देखा हो। विस्फारित नेत्रों से वह उन्हें देख रहा था कि तभी स्टीम – रोलर चलाते

हुए परमात्मा सामने से आये। उसी समय पीछे से आ रही नगरवाली बस में बैठे परमात्मा ने हॉर्न बजाया। वह हटकर सड़क की औंठ पर रुक गया। बस के अन्दर बैठे हुए परमात्माओं को देखकर उसने बड़े जोर से दाहिना हाथ हिलाया। प्रत्युत्तर में परमात्माओं ने एक प्रसन्नतापूर्ण हुंकार लगायी। राम आनन्द से भर गया।

वह मस्ती में झूमता हुआ पुल के निकट आया। यहां एक चौकी बनी हुई थी। चौकी के दर्वाजे पर परमात्मा एक फौजी जवान के यूनीफार्म में सजे-धजे खड़े थे। राम ने उन्हें एक मिलीटरी सैल्यूट प्रदान किया। परमात्मा प्रसन्न हो गये! उन्होंने भी जवाब में एक जोरदार सलामी दागी। राम के पैरों में जैसे स्प्रिंग लग गयी हो। वह उछलता-कूदता पुल पर आया। पुल के नीचे बहते परमात्मा को देखकर उसने एक किलकारी मारी और तेजी से पुल पार कर गया। यहां एक परमात्मा हाथ में छोटी-सी लकड़ी लिये एक विचित्र ढंग से सीटी बजाते हुए बायीं ओर चले जा रहे थे। उनके आगे सैकड़ों परमात्मा ऊनी खाल ओढ़े, चार पैरों पर, मन्थर गति से चले जा रहे थे। राम उनकी ओर थोड़ी देर तक रुककर देखता रहा और फिर चढ़ाव पर आ गया।

चढ़ाव वाला मार्ग एकदम ऊबड़-खाबड़ था। पहले पत्थर के पास रुककर उसने तीव्रता से दो-चार गहरी श्वासें लीं और फिर सोचा कि एक ही दौड़ में चढ़ाव पार कर ले, किन्तु तभी उसकी दृष्टि दाहिनी ओर एक वृक्ष के नीचे बैठे परमात्मा पर पड़ी। परमात्मा सेब बेच रहे थे। लाल-लाल, रेड-रॉयल देखकर उसे भूख और प्यास दोनों ही लग आयीं। उसने परमात्मा से काफी देर तक भाव-ताव किया और फिर जब उसे विश्वास हो गया कि उतने दाम वह दे सकेगा उसने ढाई सौ ग्राम सेब खरीद लिये। एक सेब पर दांत गड़ाकर, वह चढ़ाव पर बन्दर की तरह उछलता हुआ दौड़ा।

टूरिस्ट-इनफॉर्मेशन-ऑफिस के पास आकर वह रुका। उसकी सांस धौंकनी की तरह चलने लगी थी। उसे इस तरह हांफते देख, कुछ लोग खड़े होकर उसकी ओर देखने लगे। राम जब थोड़ा स्वस्थ हुआ, तो उसका ख्याल उन लोगों पर गया। परमात्माओं को अपने बारे में इस तरह चिन्तातुर देखकर वह कृतज्ञता से भर उठा। उसने झुकझुक कर उन्हें प्रणाम किया और धीरे-धीरे बाजार की तरफ चल पड़ा।

बाजार धीरे-धीरे रजनी के प्रभाव में आ रहा था। सड़कों पर, दुकानों

में, बत्तियां जगमगाने लगी थीं। सर्दी के बावजूद बाजार में खूब चहल-पहल थी। राम ने आंखें फैलाकर पूरे बाजार को देखा। परमात्मा ही परमात्मा। कहीं परमात्मा पहाड़ियों की वेशभूषा में खड़े थे, कहीं हिप्पियों की अपरम्परा-वादी साज-सज्जा में टहल रहे थे। कहीं परमात्मा भोजन बेच रहे थे, तो कहीं परमात्मा भोजन कर रहे थे। बहुत से परमात्मा चाय-काफी पीकर सर्दी भगा रहे थे। एक परमात्मा बड़े गौर से शराब की दुकान के बाहर खड़े होकर शो-विन्डो में रखी रंगबिरंगी बोतलों को देख रहे थे। पूरे बाजार में परमात्मा सहस्रों रूपों में छाया हुआ, फैला हुआ था। राम आनन्दित हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि वह नाचे। नाचे और नाचे!

एकाएक सड़क पर दो पहाड़ी परमात्मा किसी बात पर गर्म हो उठे। दोनों ने लच्छेदार भाषा का प्रयोग किया और लड़ने लगे। राम ठठाकर हंस पड़ा। एक परमात्मा छोटा-सा पिल्लू रस्सी से बांधे ठाठ से चले जा रहे थे। पीछे से ट्रक लिये हुए परमात्मा जोर से आये और पहले परमात्मा के हाथ से रस्सी छूट गयी। वे बेतहाशा भागे। राम हंसी से दोहरा हो गया। साड़ियों में लिपटे कई परमात्मा उसे इस तरह हंसते देखकर अचकचाकर खड़े हो गये। राम पलटकर पानवाले परमात्मा से पान मांगने लगा। पानवाले परमात्मा ने उसे घूरकर देखा। राम ने निचला होंठ दांतों से दबा लिया। वह अपनी हंसी रोक सकने में नितान्त असमर्थ हो गया था। बिना पान लिये वह दुकान से दूर हट गया और फिर खिलखिलाकर हंस पड़ा।

सहसा पूरे मनाली शहर की बिजली गुल हो गयी। चारों ओर अंधकार फैल गया। समस्त परमात्मा कुलबुलाये। राम की हंसी, अटटहास में बदल गयी। हंसते-हंसते वह बेदम हो गया। जब वह बुरी तरह थककर चूर हो गया तभी अन्धकार की अकुलाहट ने उसे धर दबोचा। उसने व्याकुल हो कर सिर ऊपर उठाया।

रजनीश की खोज में उसकी आंखें आसमान की ओर उठ गयीं।

१२/३४६, बेलासिस ब्रिज,
तारदेव बम्बई-३४

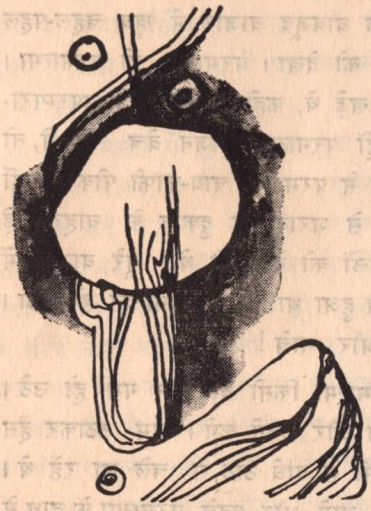

होना ही होना था

नील नयन-सागर में
पलक-पाल ताने,
चंचल-चित लहरों पर
श्वास के झकोरों में,
जीवन की जर्जर नाव
खे-खे, मन हार थका--
चूर हुआ...!

तब गहरे विश्राम में—
जागा जो सोया था!
टूटा जो सपना था!

न जाना,
न पाना,
निर्विचार चेतना में
होना ही होना था!

—महेन्द्र प्रसाद जायसवाल
एम. ए.; डिप-इन-एड.

संकलन :

गुणा बहन

क्रोध

एक मित्र ने पूछा है कि क्रोध को हम जानते हैं, पहचानते हैं लेकिन फिर भी क्रोध मिटता नहीं। लेकिन सुबह आपने कहा था कि यदि हम क्रोध को देख लें, जान लें, पहचान लें तो क्रोध मिट जाना चाहिए।

इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लें। पहली बात यह है कि क्रोध के विरोध में हमें इतनी बातें सिखायी गयी हैं कि उन विरोधी बातों के कारण क्रोध को हम कभी भी सरलता से देखने में समर्थ नहीं हो पाते। जिससे हमारा विरोध है उसे देखना मुश्किल हो जाता है। जिसके संबंध में हमने पहले से निर्णय ले रखा है कि वह पाप है, बुरा है, नर्क का द्वार है, उसे हम देख कैसे सकेंगे? देखते ही हमारे भीतर विरोध दौड़ जाता है। विरोध के कारण हमारे और क्रोध के बीच एक दीवाल खड़ी हो जाती है, वह दीवाल देखने नहीं देती।

अपनी विभिन्न कुरूप मुद्राओं द्वारा भगवान बुद्ध का उपहास करता हुआ एक आजीवक। तथागत एवं उनके उपदेशों की नुक्ताचीनी करना आजीवक अपना परम धर्म मानते थे।

आपने कभी अपने दुश्मन के चेहरे को गौर से देखा है ? जिससे दुश्मनी हो उसे देखने का मन ही नहीं करता और फिर जिससे दुश्मनी है उसे आप देखना भी चाहें तो नहीं देख सकते हैं। आप वही देख लेंगे जो आपने दुश्मनी में मान रखा है। दुश्मन को देखना बहुत गलत है क्योंकि दुश्मन के संबंध में हमने निश्चित धारणा बना रखी है कि बुरा आदमी है। वह जो हमारी धारणा है उसके ही हमें दर्शन हो जायेंगे, उसके नहीं जो दुश्मन असलियत में है, जैसा है। क्रोध के, काम के, लोभ के, भय के संबंध में हमें इतनी बातें सिखायी गयी हैं कि हमारा पूरा चित्त धारणाओं से भर गया है। क्रोध को हम नहीं जानते, क्रोध के संबंध की धारणा को ही जानते हैं। कंसेप्ट जो हमारा है, वही जानते हैं। हमने क्रोध को कभी आमने-सामने एनकाउंटर नहीं किया। हमने कभी उसे वैसा ही नहीं देखा, जैसा वह है। हमें जो बताया गया है और जो हमें बताया गया है वही हम देख लेते हैं। तो पहली बात यह कि अगर क्रोध को, लोभ को, सेक्स को देखना हो तो उस संबंध में सारी सीखी धारणाओं को एक बारगी छोड़ देना आवश्यक है। निष्पक्ष मन लेकर जाना पड़ेगा। बड़ी मुश्किल होगी। क्रोध के संबंध में कैसे निष्पक्ष मन लें—वह तो जहर है, पाप है। सभी संतों ने, सभी महात्माओं ने, सभी महापुरुषों ने कहा है, पाप है—बुरा है। उसके संबंध में निष्पक्ष कैसे हो जायें ? यह संत-महात्माओं की सारी शिक्षा निष्पक्ष नहीं होने देती और जबतक निष्पक्ष नहीं होते तबतक दर्शन नहीं होगा और जबतक दर्शन नहीं होता तबतक मुक्त होना संभव नहीं है।

पहली बात है, निष्पक्ष मन—कि क्रोध क्या है? लेकिन आप कहेंगे, हमें मालूम है कि क्रोध क्या है ? हम जानते ही हैं, सब किताबों में लिखा है, सब शिक्षाएं कहती हैं कि क्रोध आग है, नर्क है, जहर है; क्रोध मत करना; वह हम मानते हैं। यह हमने मान रखा है क्रोध को बिना जाने। क्या यह अन्यायपूर्ण नहीं है ? जैसे किसी आदमी को हमने कभी नहीं देखा है और उसके संबंध में कोई धारणा बना लें और यह धारणा

हम मजबूत करते चले जायें और अगर वह आदमी कभी हमारे सामने भी आ जाय तो भी फिर देखना मुश्किल हो जायगा। धारणा हमारे और उस आदमी के बीच में खड़ी हो जायगी एक चश्मे की तरह; और जो हमारी धारणा का रंग होगा वही हमें दिखायी पड़ जायगा। यह खेल सूक्ष्म है और इसलिए हम क्रोध के विरोध में तो बहुत बातें कहते हैं लेकिन क्रोध से मुक्त नहीं हो जाते। हम मुक्त हो ही नहीं सकते क्योंकि हम क्रोध को जान ही नहीं पाते। जिसे हम जानते नहीं उससे मुक्त हम कैसे हो सकते हैं? तो मैं आपसे कहूंगा कि यद्यपि आप कहते हैं कि क्रोध को मैं जानता हूं, लेकिन आप नहीं जानते। जो आपने सुन रखा है वही आप जानते हैं, वही आप पहचानते हैं। क्रोध की सीधी और नग्न अवस्था बिना किसी धारणा के निष्पक्ष आपने नहीं जानी। उसे जानना जरूरी है। तो पहली बात, मन की सारी वृत्तियों के संबंध में पूर्व निर्धारित विचार छोड़ दें और मन के भीतर इस तरह जायें जैसे हम अनजान दुनिया में जाते हों; जहां हम कुछ भी नहीं जानते, जहां सब अपरिचित है, अनजान है। हम एक भी चीज नहीं जानते कि मन के भीतर क्या है, क्या नहीं है। हम सिर्फ देखने जा रहे हैं, परिचित होने जा रहे हैं, सिर्फ क्रोध देखेंगे ऐसे ही जैसे रास्ते के किनारे किसी वृक्ष पर फूल खिला है या किसी वृक्ष पर कांटे लगे हों। ऐसे ही किसी रास्ते के किनारे से चित में प्रवेश होते क्रोध दिखेगा, घृणा दिखेगी, लोभ दिखेगा और आज सीधा मुकाबला होगा। आज हम बीच में कोई धारणा नहीं लिए हुए हैं। शास्त्र क्या कहता है उससे हमें प्रयोजन नहीं, संत क्या कहते हैं उससे हमें प्रयोजन नहीं। क्रोध मेरे पास है, मैं खुद क्यों न देख लूं। इससे संतों से उधार सीखने की क्या जरूरत है? लेकिन हमारा पूरा दिमाग उधार और 'बारोड' है। हमारे पास अपना कुछ भी नहीं, अपने पास जो है उसकी पहचान भी अपनी नहीं, वह भी हम किसी और से पूछने जाते हैं।

रामकृष्ण एक दिन बहुत हंसने लगे। बहुत लोग इकट्ठे थे और वे कहने लगे, आज बहुत मजा हुआ। एक आदमी उनसे मिलने आया था। उसके पड़ोस के मकान में रात आग लग गयी थी। मैंने उससे पूछा, तेरे पड़ोस के मकान में सुना है आग लगी थी? उसने कहा, नहीं। मैंने तो अखबार देखा था, उसमें तो कोई खबर थी नहीं। पड़ोस के मकान में लगी आग उसने सुबह अखबार में देखी। अखबार में तो कोई खबर नहीं है। नहीं लगी है आग। आग लगती तो अखबार में खबर होती। रामकृष्ण कहते हैं कि उस आदमी से सुनकर मुझे बहुत ही हंसी आयी। पड़ोस के मकान की आग भी उसने खुद नहीं

देखी, वह भी अखबार से उधार देखेगा। पड़ोस का मकान फिर भी दूर है, लेकिन अपने भीतर जो है वह भी हम दूसरे से सीखने जाते हैं। क्रोध कैसा है, प्रेम कैसा है, घृणा कैसी है? वह भी हम पूछते हैं शास्त्रों से। वे पुराने अखबार हैं, हजार साल पहले के। वह आदमी तो फिर भी नया अखबार देखता था। लेकिन जितना पुराना शास्त्र हो हम कहते हैं उतना ही श्रेष्ठ है, उतनी ही पुरानी खबर हम पढ़ने जाते हैं और उसमें से हम जांच करेंगे हमारे भीतर क्या है!

क्या हम सब सेकण्डहैंड आदमी हैं? सब पुराना माल है, कोई नया आदमी नहीं? क्या अपने भीतर जो है उसे भी दूसरे से पूछने जाने की जरूरत है? लेकिन ऐसा ही हुआ है। पूरी मनुष्यता सेकण्डहैंड हो गयी है। कोई आदमी मौलिक नहीं है। जब भी कोई आदमी मौलिक होगा तभी क्रांति हो जायेगी, क्योंकि वह चीजों को जानेगा, कि क्या हैं। हमने बस शब्द सीख रखे हैं। हम कहते है क्रोध बुरा है। न हम क्रोध को जानते हैं, न हम बुरा क्या है इसको जानते हैं। बस सीख रखे हैं शब्द तोते की तरह और हम उन्हीं शब्दों पर जीते चले जाते हैं। अगर कोई अच्छे शब्द दे दिये जायें क्रोध को तो हो सकता है हम उसे बुरा कहना भी बन्द कर दें। कहते हैं, कुछ क्रोध ऐसे होते हैं जो अच्छे होते हैं। फिर क्रोध में बुराई नहीं रह जाती। धार्मिक क्रोध भी होते हैं। क्रोध कैसे धार्मिक हो सकता है? क्या नर्क भी धार्मिक हो सकता है? लेकिन धर्मयुद्ध भी होता है। धार्मिक क्रोध भी होते हैं, धार्मिक हिंसा भी होती है। फिर हम शब्द नया दे देते हैं, फिर हम लड़ जाते हैं, फिर हमें कोई फिक्र नहीं है। १९५२ में हिमालय की तराई में नीलगाय नामक जानवर ने खेतों में बहुत नुकसान किया था। फिर पार्लियामेंट तक बात उठी कि क्या करें। तो लोगों ने कहा कि गाय है, उसको गोली तो मारी नहीं जा सकती, नाम ही है उसका नीलगाय। गाय वह नहीं है, लेकिन नाम में गाय जुड़ा होने से तो धार्मिक उपद्रव, दंगे हो जायेंगे। तो एक समझदार सदस्य ने सलाह दी कि पहले उसका नाम नीलघोड़ा रख दिया जाय। फिर उसका नाम पार्लियामेंट ने नीलघोड़ा रख दिया। फिर उस नीलघोड़े को गोली मारी गयी और हिंदुस्तान में किसी शंकराचार्य ने नहीं कहा कि हमारी गाय को गोली मार दी। वह नीलघोड़ा हो गयी। वह बिचारी वही की वही रही, वह जो थी वही रही, उसके नाम में कोई फर्क नहीं पड़ा। यदि नीलघोड़े को गोली मार दी तो हिन्दुस्तान में क्या नुकसान होने वाला है। हां, नीलगाय को गोली लगती तो झंझट खड़ी हो सकती थी।

हम कुछ नहीं जानते हैं सिर्फ शब्द और लेबल से जीते हैं। बड़ी होशियारी

की बात है। नाम बदल दें तो सब खत्म हो जाता है। क्रोध, बस एक नाम हमने सीख रखा है। हिंसा, एक नाम हमने सीख रखा है। लोभ, एक नाम हमने सीख रखा है। और उस नाम के साथ भी हजारों साल का प्रचार है और हमारा मस्तिष्क सिर्फ प्रचार से जी रहा है। यह आपको पता नहीं शायद कि प्रचार के द्वारा कुछ भी सत्य मालूम पड़ने लगता है, जो भी प्रचारित किया जाय वही सत्य मालूम पड़ने लगता है। और जब सत्य मालूम पड़ने लगता है तो जो सत्य है उसको देखना मुश्किल हो जाता है। प्रचार से बचना जरूरी है, अगर क्रोध को देखना हो, जानना हो, पहचानना हो। तो प्रचारित जो दिमाग का संस्कार बिठा दिया गया है कि पाप है, बुरा है, उसको दोहराये जाते हैं। फिर जैसे ही क्रोध आ जाता है, तो क्रोध को जानते तो हैं नहीं, वह उल्टा हमें पकड़ लेता है। क्रोध हम पर सवार हो जाता है। हम दुखी होते हैं। दूसरे को दुख दे लेते हैं। जब क्रोध चला जाता है तो तोतों की रटी बात फिर पीछे लौट आती है और कहने लगते हैं कि क्रोध बहुत बुरा है, क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध करके बहुत पाप किया। फिर हम कसमें खाते हैं, पश्चात्ताप करते हैं, अब नहीं करेंगे। और हमें पता नहीं कि जिसको हम कह रहे हैं नहीं करेंगे, उससे हमारी कोई पहचान नहीं है। जब वह आ जायेगा तो हम एकदम हार जायेंगे क्योंकि जिसे हम पहचानते ही नहीं उससे जीत कैसे संभव है? इसलिए रोज आदमी तय करता है, अब क्रोध नहीं करेंगे और रोज क्रोध करता है। रोज तय करता है, वही रोज करता है; फिर और जोर से तय करता है फिर और जोर से कसम खाता है, संकल्प लेता है, भगवान के मंदिर में जाकर प्रण करता है, साधु-संन्यासियों के सामने प्रतिज्ञा और व्रत लेता है और फिर वही होता है। नहीं, ये व्रत और प्रतिज्ञाएं और संकल्प दो कौड़ी के हैं।

इनसे कुछ होने वाला नहीं है। असली सवाल है जिसे आप बदलना चाहते हैं क्या उससे आप परिचित हैं? पहली बात : ये सारी धारणाएं छोड़ दें। कौन कहता है क्रोध बुरा है, कौन कहता है सेक्स बुरा है? हमारे भीतर जो है हम जानेंगे, खुद ही जानेंगे। हम दूसरे से पूछने क्यों चले जायं, भीतर प्रवेश करें निष्पक्ष मन लेकर। लेकिन ऐसा मत सोचना, मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमने आपकी भी कोशिश की लेकिन अभीतक छुटकारा नहीं हुआ। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि चाहना कठिन है। छुटकारा चाहने में वह मानी गई बात बैठी हुई है कि क्रोध बुरा है। मैं आपसे कहता हूं कि जानिये क्रोध को, छुटकारा हो जायगा। छुटकारा पाने के लिए अगर जानने गये तो निर्णय पहले से मौजूद है कि बुरा है, उससे छूटना है, फिर नहीं छुटकारा होगा। वह कहते हैं आपकी बात भी हम

श्रद्धांजलि

आचार्यश्री की प्रवचन-सभाओं में, अध्यात्म शिविरों में, सत्संग सभाओं में जिन लोगों ने श्रीमती बाबी बहेन को देखा होगा, उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि यह सरलहृदया, उत्साही, कर्मठ एवं क्रियाशील सन्नारी निकट भविष्य में ही दुर्घटना का शिकार होकर काल-कवलित हो जाएगी !

श्रीमती बाबी बहेन अपनी वृद्धावस्था में भी आध्यात्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यों में सक्रिय भाग लेती थीं। बम्बई तथा बम्बई से बाहर की कितनी ही संस्थाओं से वे सम्बद्ध थीं – चाहे वह संस्था 'बाल्कन-जी--बारी' हो, चाहे 'शक्तिदल' अथवा 'महाराष्ट्र वीमेन्स कांउंसिल'। 'भाटिया स्त्री-मण्डल' की वे अध्यक्षा थीं और 'नूतन बाल-शिक्षण' की संस्थापिका।

गांधीजी से प्रभावित होकर बाबी बहेन ने आजीवन खादी धारण का व्रत ले रखा था और राष्ट्रीय आंदोलन में उनका योगदान अमूल्य था।

आचार्यश्री रजनीश के सम्पर्क में आने के बाद उनमें आध्यात्मिकता की तीव्र लगन जाग्रत हुई थी। वे दिव्य ज्ञान की उपलब्धि के प्रति सतत साधनारत रहती थीं और जीवन जागृति केन्द्र की गतिविधियों में उनका सदैव सक्रिय सहयोग रहता था।

गत दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में बम्बई के वल्लभभाई स्टेडियम में आचार्यश्री रजनीश की ध्यान सभा में सम्मिलित होने के लिए सड़क पार करते वक्त हुई दुर्घटना के फलस्वरूप २३ दिसंबर को श्रीमती बाबी बहेन की जीवन-ज्योति हमेशा हमेशा के लिए अनंत महाज्योति में लीन हो गई !

परमात्मा उनकी पवित्र आत्मा को परम शांति प्रदान करे।

माने लेते हैं; लेकिन छुटकारा कब होगा ? आपने फिर मेरी बात समझी ही नहीं। छुटकारे की जो बात आप कहते हैं वह दूसरे की माने हुए बैठे हैं कि बुरा है क्रोध, इसलिए छुटकारा चाहिए। फिर अगर मेरी बात सुनते तो कहते अच्छी बात है, अगर इस तरकीब से छुटकारा होता हो तो हम यह तरकीब भी करते हैं। लेकिन छुटकारा होगा कि नहीं ? हम धारणा भी छोड़ने को राजी हैं लेकिन

छुटकारा होगा कि नहीं ? तब कैसी धारणा छोड़ रहे हैं आप ? अगर धारणा छोड़ रहे हैं तो छुटकारे का सवाल समाप्त हो जाता है। हम जानने जाते हैं क्या है और जानने से जो होगा वह होगा। जानने से छुटकारा होता है। छुटकारा पाने के लिए जान नहीं सकते हैं आप। छुटकारा पाने के लिए जानने की प्रक्रिया में बाधा पड़ेगी, जान नहीं सकेंगे। क्योंकि जिससे छूटना है जल्दी, जिससे मुक्त होना है उसे जानने का धीरज, जानने की सरलता कैसे हम बरत पायेंगे उसके साथ ?

अगर कोई आदमी आपके घर आये और आप चाहते हैं कि जल्दी चला जाय, फौरन चला जाय, तो आपने कभी ख्याल किया है—क्या होता है ? आप उसकी बात नहीं सुन पाते हैं, ऐसा देखते हैं कि आप सुन रहे हैं लेकिन भीतर चल रहा है कि यह आदमी कब जाय। हां, ये भी कहते हैं कि बिल्कुल ठीक है, आप जो कहते हैं बिल्कुल ठीक है, लेकिन भीतर यह होता है कि आदमी जल्दी चला जाय। भीतर कुछ नहीं सुनायी पड़ रहा है। न वह आदमी दिखायी पड़ रहा है। बार बार घड़ी देख रहे हैं और लग रहा है कि कितनी देर हो गयी ! कब चला जाय। यह सारा चल रहा है और ऊपर से यह भाव चल रहा है। हम देख रहे हैं, हम सुन रहे हैं, हम स्वागत कर रहे हैं, और भीतर ? भीतर एक दीवाल खड़ी हो गयी है, क्योंकि उस आदमी को बरदाश्त नहीं कर पा रहे हैं। क्रोध को जानना है, सेक्स को जानना है, हिंसा को जानना है। छुटकारे का क्या सवाल है ? जानेंगे अगर कि ये अच्छे हैं, तो छुटकारा क्यों पायेंगे ? अभी हम जानते नहीं इसलिए पहले से निर्णय न करें कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है। जिसने सोचा यह अच्छा है, यह बुरा है, वह बुराई से कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि अच्छा वह दूसरे के अनुभव के आधार पर तय कर रहा है, और दूसरे के अनुभव के आधार पर पक्षपात तय कर रहा है; और पक्षपात स्वयं का ज्ञान पैदा नहीं होने देता। वह एक चक्र में पड़ा है जिसमें पूरा जीवन नष्ट कर लेगा और कहीं भी नहीं पहुंच सकता है। बस, जानना है, और जानने से मुक्ति आती है। वह गौण बात है, उसके लिए चिन्ता करने का प्रयोजन नहीं, सारी धारणा छोड़ दें। क्रोध क्या है ? तो मत कहें कि बुरा है, मत कहें कि अच्छा है, मत कहें कि मैं जानता हूं। इतना ही कहें कि मैं नहीं जानता हूं, मैं जानना चाहता हूं। इतनी सरलता से कि मैं नहीं जानता हूं और जानना चाहता हूं। अगर आपका मन तैयार है तो आप क्रोध को जान लेंगे और जानते ही क्रोध से मुक्त हो जायेंगे। जानने के बाद एक क्षण भी कोई बंधन नहीं है किसी बात का।

यह ऐसा ही है, जैसे एक मकान के भीतर मैं बैठा हूं और मैं कहूं कि

मुझे दरवाजे से बाहर निकलना है। फिर आपसे मैं कहूं, आप आंख खोलकर गौर से देखिये दरवाजा कहां है, आपको दिख जायगा और आप निकल जायेंगे। वह आदमी कहे कि ठीक है, हमें दरवाजा दिख गया तो भी हम निकलेंगे कैसे? और आदमी कहे कि मुझे दरवाजा तो दिखायी पड़ता है लेकिन मैं निकल नहीं पाता, निकलता हूं तो दीवाल से टकरा जाता हूं। तो हम कहेंगे कि वह दरवाजा कहीं की सुनी हुई खबर होगी कि यहां दरवाजा है। आपको नहीं दिखायी पड़ता है, नहीं तो फिर कैसे दीवाल से टकरा जाते? वह आदमी कहता है, मुझे दरवाजा तो मालूम है लेकिन जब भी निकलता हूं, दीवाल से टकराता हूं, दरवाजे से निकल नहीं पाता। लेकिन दरवाजा मुझे मालूम है तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे दरवाजा मालूम नहीं होगा अन्यथा निकल गये होते, दीवाल से क्यों टकराते? सुना होगा कहीं कि यहां दरवाजा है। वह सुनी हुई बात पकड़ ली है, इसलिए टकराहट होती है और जिसे दरवाजा दिखायी पड़ता है वह नहीं पूछता कि मैं कैसे निकलूं? दिखायी पड़ना और निकल जाना एक ही साथ हो जाते हैं।

तो पहली बात, अंतस जीवन के तथ्य का सीधा ज्ञान, उधार ज्ञान नहीं। और इसलिए क्रोध आने पर अभी हम क्या करते है? अगर मैं आप पर क्रोधित हो जाऊं तो आप क्या करेंगे, पता है आपको? अगर मैं आपको गाली दूं और अपमानित करूं और मैं आप पर क्रोधित हो जाऊं तो आपके भीतर क्रोध जगेगा। उस क्रोध में आप क्या करेंगे? आपको पता है? आज तक आपने क्या किया है आपको पता है? उस क्रोध में आप अपने को भूल जायेंगे और मेरी बाबत विचार करेंगे कि इस आदमी ने ऐसा क्यों कहा। यह आदमी बुरा है। इस आदमी से कैसे बदला लूं? जब आप क्रोध से भरेंगे तो आपका पूरा ध्यान मुझपर चला जायगा – क्रोध आपके भीतर होगा और ध्यान मुझपर होगा। आप क्रोध को जानने से वंचित हो जायेंगे क्योंकि ध्यान मुझ पर है और क्रोध भीतर चल रहा है। अब दोबारा क्रोध आये तो उसकी फिक्र छोड़ दें जिसने गाली दी है। अब तो भीतर पहुंच जायं, कमरा बन्द कर लें और भीतर झांकें और बैठ जायें जहां भीतर क्रोध है। जिसने क्रोधित किया है उस पर हमारा ध्यान होता है, जो क्रोधित हो गया है उस पर हमारा ध्यान नहीं होता है, इसलिए हम क्रोध को कभी नहीं जान पाते। आग यहां भीतर चलती है और नजर हमारी लगी होती है उस आदमी पर और हम विचार कर रहे होते हैं कि क्या करें, कैसे बदला लें? सारा चित्त वहां है और यहां भीतर आग लगी है। इस हालत में कैसे आप जान पायेंगे?

एक युवक खेल रहा है हाकी। पैर में चोट लग गयी है, खून बह रहा है। उसे पता ही नहीं है जबतक वह खेल रहा है। खून बह रहा है, पैर में चोट लग गयी है, नाखून टूट गया है। दूसरे को खून बहता हुआ दिखायी पड़ रहा है, उसे पता नहीं, उसका सारा ध्यान खेल पर लगा हुआ है। पैर पर ध्यान नहीं है उसका। खेल बन्द होगा और उसे ध्यान आयेगा कि अरे, यह तो पैर में चोट लग गयी! कबसे खून बह रहा है, कितना खून गिर गया है, लेकिन मुझे पता ही नहीं है। पता हमें उन्हीं चीजों का होता है जहां हमारा ध्यान होता है। पता का अर्थ है जहां ध्यान है। जब आपको क्रोध होता है तो आपका ध्यान कहां होता है : क्रोध के ऊपर होता है? अगर क्रोध के ऊपर होगा तो आप क्रोध को जान लेंगे। लेकिन क्रोध के ऊपर नहीं होता है। जिसने क्रोध को जगाया है उस निमित्त के ऊपर होता है, उस व्यक्ति पर होता है। हमारी आंखें वहां अटकी होती हैं। हो सकता है वह आदमी यहां न हो, वह लंदन में बैठा हो। लेकिन क्रोध हमारा उस पर होगा। एक आदमी ने लंदन से आपको चिट्ठी लिख दी और गालियां लिख दीं और आप चिट्ठी को फाड़ कर फेंक देंगे और ध्यान लंदन के उस आदमी पर चला जायगा। यह आदमी जो भीतर बैठा है, जो क्रोध में जल रहा है, आग में भुन रहा होगा इसपर ध्यान नहीं होगा। तो जहां ध्यान होगा वहां पता चलेगा, जहां ध्यान नहीं है वहां कैसे पता चलेगा? लेकिन आप कहेंगे कि मैंने कई दफा क्रोध किया है, मुझे क्रोध का पता नहीं है क्या? मुझे क्रोध का पूरा पता है क्योंकि मैंने जिन्दगी भर क्रोध किया है। आपने जिन्दगी भर क्रोध किया है लेकिन हमेशा आपका ध्यान क्रोध के क्षण में वहां चला गया है, जहां क्रोध नहीं है। वहां से लौट गया है जहां क्रोध है और इसलिए ध्यान और क्रोध का मिलन कभी नहीं हो पाया है। जब क्रोध चला जायगा, बह जायेगा आगे, तो आप वापस लौट आयेंगे लंदन के दुश्मन से। तब आप कहेंगे, अरे मकान गिर गया, जगह जगह दीवालें गिर गयीं, यह तो बहुत बुरा हुआ, यह तो पश्चात्ताप हो गया। अब मैं निर्णय करता हूं, क्रोध कभी नहीं करूंगा। फिर क्रोध, फिर यही दोहरायेंगे बात, फिर नजर वहां चली जायगी, यहां क्रोध चूक जायगा। नहीं, क्रोध पर करना है ध्यान, तब आप जान सकेंगे। जिसपर ध्यान होता है उसे ही हम जान पाते हैं। लेकिन आप कहेंगे, क्रोध पर कैसे ध्यान करें? क्योंकि क्रोध में हम होश में नहीं रहते। ध्यान-वान कौन करेगा? वहां तो हम बेहोश हो जाते हैं।

निश्चित ही अब तक ऐसा ही हुआ है और इसलिए आप क्रोध को जान नहीं पाये। आपको सिर्फ क्रोध की स्मृति है, गये हुए क्रोध की, मरे हुए क्रोध की, अतीत के क्रोध की स्मृति है। वर्तमान के क्रोध को आपने कभी नहीं जाना। अतीत के क्रोध की स्मृति है, भविष्य के क्रोध के लिए निर्णय है और वर्तमान के क्रोध से कोई परिचय नहीं है। मेमोरी भरी है कि हां, ऐसा हुआ था और भविष्य में क्रोध नहीं करूंगा इसका संकल्प है और वर्तमान क्रोध की कोई अनुभूति, वर्तमान क्रोध का कोई साक्षात्कार नहीं है। यदि वर्तमान के क्रोध का साक्षात्कार हो जाय, तो न अतीत की स्मृति की जाती है, न भविष्य की योजना की। वर्तमान में क्रोध को जो जान लेते हैं उनकी हालत वैसी ही हो जाती है जैसे आग लगे हुए मकान में आदमी छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है।

बुद्ध ने कहा है कि जब मैंने जाना तो मैंने पाया है कि अद्‌भुत हैं वे लोग जो दूसरों की भूल पर क्रोध करते हैं। क्यों? तो बुद्ध ने कहा कि अद्‌भुत इसलिए कि भूल दूसरा करता है, दंड वह अपने को देता है। गाली मैं आपको दूं और क्रोधित आप होंगे। दंड कौन भोग रहा है? दंड आप भोग रहे हैं, गाली मैंने दी। क्रोध में जलते हम हैं, राख हम होते हैं, लेकिन ध्यान वहां नहीं होता इसलिए धीरे धीरे पूरी जिन्दगी राख हो जाती है और हमको भ्रम यह होता है कि हम जान गये हैं। हम जानते नहीं, क्रोध की सिर्फ स्मृति है और क्रोध के संबंध में शास्त्रों में पढ़े वचन हैं, हमारा कोई अनुभव नहीं। अब जब मैं कह रहा हूं कि जानें, तो अब जब भी क्रोध आ जाय तो उस को धन्यवाद दें जिसने क्रोध पैदा करवा दिया, क्योंकि उसकी कृपा कि उसने आत्म-निरीक्षण का एक मौका दिया, भीतर आग को जानने का एक अवसर दिया। उसको फौरन धन्यवाद दें कि मित्र धन्यवाद! और अब मैं जाता हूं, थोड़ा इसपर ध्यान करके वापस आकर बात करूंगा। द्वार बन्द कर लें और देखें कि भीतर क्रोध उठ गया है। हाथ-पैर किस तरह कस रहे हैं। हाथ-पैर कसते हों, कसने दें क्योंकि हाथ-पैर कसेंगे। हो सकता है कि क्रोध में, अंधेरे में हवा में घूंसे चलें। चलने दें, द्वार बन्द कर दें और देखें कि क्या क्या होता है। अपनी पूरी पागल स्थिति को जानें और अपने पागलपन को पूरा प्रगट हो जाने दें अपने सामने। तब आप पहली दफा अनुभव करेंगे कि क्या है यह क्रोध। यदि आपने बाजार में किया होता, तो उस आदमी की गर्दन दबा ली होती, पत्थर उठा लिया होता, रास्ते के किनारे दौड़ते, अनर्गल बातें बकने लगते, आंख से खून बरसने लगता, यह सब हो जाने दें, द्वार बन्द कर लें और यह सब होने दें। जो भी हो सकता है और देखें भीतर से यह सब क्या हो रहा है? और जब पूरी आग, और

पूरी मैडनेस और पूरा पागलपन पकड़ेगा तब कंप जायेंगे भीतर कि यह है क्रोध। यह मैंने कई बार किया था। दूसरे लोगों ने क्या सोचा होगा! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि क्रोध संक्षिप्त रूप में आया हुआ पागलपन है, थोड़ी देर के लिए आया हुआ पागलपन है, क्षणिक पागलपन है। क्षण भर में आदमी उसी हालत में हो गया जिस हालत म कुछ लोग सदा के लिए हो जाते हैं। क्रोध से जलते हुए आदमी में और पागल आदमी में मौलिक अन्तर नहीं है। अन्तर सिर्फ लंबाई का है। पागल आदमी स्थायी पागल है, क्रोधी आदमी अस्थायी पागल है। आपने कभी देखा है? दूसरे ने आपको क्रोध में देखा है इसलिए दूसरे कहते हैं कि यह बेचारा कितना पागल हो गया है, यह क्या करता है! आपने कभी देखा है अपने को? तो कर लें द्वार बन्द और अपनी पूरी हालत को देखें कि यह हो रहा है, और रोकें मत, पूरा प्रगट होने दें जो हो रहा है। और उसका पूरा निरीक्षण करें तब आप पहली दफा परिचित होंगे– यह है क्रोध। लेकिन ऐसा न सोचना कि कोई क्या कहेगा? कहीं पत्नी न देख ले, पत्नी बहुत दफा देख चुकी है आपके पागलपन को और आप भी अपनी पत्नी के पागलपन से भलीभांति परिचित हैं और बेटे भी आपको जानते हैं अच्छी तरह, और आप भी बेटे को जानते हैं। लेकिन कोई चिन्ता मत करना बल्कि उनसे कह देना क्रोध का निरीक्षण करता हूं और पागल हो जाता हूं कभी, उसको जानना चाहता हूं। हो सकता है जोर से आवाजें निकलने लगें, गाली निकलने लगे, दीवाल पर घूंसा पड़ने लगे—पड़ने दें। एक बार पूरी तरह क्रोध को पूरी नग्न स्थिति में देख लेना, उसके बाद दोबारा वह नहीं होगा क्योंकि तब आप पूरे परिचित होंगे ही कि यह स्थिति है। आइना लगा लेना, उसमें देखते जाना क्या क्या होता है? यह क्या हो रहा है? और एक बार भी पूरा नग्न दर्शन भीतर का, क्रोध के पूरे वर्तुल का, पूरे बवंडर का हो जाय तो आप पहली दफा अनुभव करेंगे क्या है क्रोध। और उसके बाद कसम लेने की जरूरत नहीं होगी कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। उसके बाद कोई आयेगा और कहेगा कि अपनी जायदाद आपके नाम लिखता हूं, आप फिर से पागल हो जाइए एक मिनट के लिए। और कोई कहेगा दुनिया आपको देते हैं तो आप कहेंगे, क्षमा करें, मैंने जान लिया कि क्या है क्रोध। जिसने जान लिया वह मुक्त हो जाता है। और जो मैं क्रोध के लिए कह रहा हूं वही सारी चीजों के लिए भी है – चाहे लोभ हो, चाहे सेक्स हो, चाहे कुछ भी हो। जिन्दगी में जो भी हमें पकड़े हुए है उसको जानना है, उसको जानने से उसका परिवर्तन है; ऐसा आपने जाना है तो फिर दोबारा जानने की जरूरत नहीं। छोटा सा बच्चा भी क्रोध करने लगता है तो हम कहते हैं, अभी नहीं, अभी दूसरा मौजूद है, मेहमान घर में आया हुआ है, अभी नहीं। वह बेचारा पी जाता है। बचपन

से ही पिये है क्रोध को। वह हमारी नस, नाड़ी में भर गया है, सब तरफ फैल गया है, फिर जिन्दगी भर पीते ही चले जाना है, कभी प्रगट ही नहीं किया। अगर मेरा वश चले तो मैं आपको कहूं, बच्चे को रोकना मत। जब बच्चे क्रोध में भर जायं तो रोकना मत और आइना लेकर सामने कर देना और कहना कि करो जोर से और देखो, कैसी हालत में हो तुम और क्या हो गया है, इसे तुम देखो। हम सब भी घर के लोग बैठकर तुम्हारा निरीक्षण करेंगे, क्योंकि तुम्हारे निरीक्षण से हो सकता है हमको भी लाभ हो जाय। रोकना मत उसे।

सारी शिक्षा गलत है। पूरे व्यक्तित्व का, मनुष्य को बनाने का विज्ञान गलत है, इसलिए गलत आदमी पैदा होगा। अगर बचपन से बच्चे को उसके क्रोध की पूरी की पूरी झलक मिलनी शुरू हो जाय, जवान होते होते वह क्रोध के बाहर हो जायगा। वह इसीलिए क्रोध के बाहर हो जायगा जैसे आज वह गंदगी के बाहर है। गंदे कपड़े नहीं पहनता, लेकिन गन्दी आत्मा को पहने रहता है। यह कैसे संभव है? यह संभव इसलिए हो सका है कि हमने कभी पहचाना भी नहीं है कि आत्मा की गंदगी क्या है, आत्मा की अग्लीनेस क्या है? कुरूपता क्या है? वह कभी सामने नहीं आयी, उसे कभी देखा नहीं, सिर्फ दबा लिया है और दबाकर भीतर कर लिया है। ऊपर से मुस्कुराहट थोप ली है, भीतर से क्रोध जल रहा है, वह जलता रहा है। क्रोध बढ़ता रहा है, बढ़ता रहा है, उसने उसके प्राणों को घेर लिया है। हर आदमी एक ज्वालामुखी है, जिसमें चारों तरफ वह किसी तरह अपने को संभाले हुए है, बस किसी तरह सम्हाले हुए है। भीतर न मालूम कितनी चीजें चल रही हैं। वह उसे धक्का देती हैं कि यह करो, यह करो। जब रास्ते पर आप निकलते हैं तब ख्याल करना अपने मन पर आप कि क्या क्या करने का मन नहीं होता है। घर बैठे हैं, तब भी क्या क्या करने का मन नहीं होता है। कितनी बार कितने लोगों की हत्या नहीं की है? कितनी बार जरा सी बात में किसी की गर्दन नहीं काट दी? बाहर नहीं काटी, नहीं तो यहां नहीं होते आप। भीतर काटी, मन में काटी। कितनी बार नहीं सोचा, जहर पिला दें इस आदमी को! वह किया या सोचा बार बार है, उसमें कोई फर्क नहीं है। कमजोर हैं इसलिए कर नहीं सके, लेकिन जहां कर सकते थे वहां पूरी तरह से कर लिया है। कितनी दफे खुद की आत्महत्या नहीं कर ली है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसने जिन्दगी में अपने आप दो-चार बार अपने को खत्म करने का विचार न किया हो। खोजना ही मुश्किल है ऐसा आदमी जिसने दस-पच्चीस दफा नहीं सोचा कि खत्म कर दो। ऐसा बेटा खोजना मुश्किल है जिसने बाप को खत्म करने की बात न सोची हो, ऐसा पति खोजना मुश्किल है जिसने पत्नी की गर्दन कई दफा न दबा

दी हो। वह सब चल रहा है भीतर, बाहर से कोई कहता नहीं। इसीलिए तो दुनिया सम्हली हुई है। अगर भीतर के राज़ सब आदमी खोल दें तो आज पता चल जाय कि दुनिया की क्या हालत है! अगर पांच आदमी तय कर लें कि हम अपनी सब असलियत की बातें जैसी होंगी वैसी कह देंगे तब आपको पता चलेगा कि दुनिया की हालत क्या है। दिन में पच्चीस दफा वह आदमी एक-दूसरे से आकर कहेगा कि अभी मैंने तुम्हारी गर्दन में आकर छुरा मारा है। वह हम सब कर रहे हैं।

मैंने सुना है कि नियाग्रा जलप्रपात के पास एक पत्थर है। ऐसी खबर है कि उस पत्थर पर खड़ा होकर जो भी भाव किया जाय वह पूरा हो जाता है। तो कई लोग जाकर वहां भाव करते हैं। एक जोड़ा वहां खड़ा हुआ है पति और पत्नी का। दोनों आंख बन्द करके प्रयोग कर रहे हैं। एकदम पत्नी को चक्कर आया और पत्थर के नीचे नियाग्रा में गिर पड़ी। उस पति ने कहा, हे भगवान, मालूम होता है भाव पूरे हो जाते हैं। वह बेचारा यहां भाव कर रहा था खड़े होकर कि कहीं ऐसा हो जाय कि पत्नी नियाग्रा में चक्कर खाकर गिरे। यह हमारे भीतर है सब, इसको हम छिपाये हुए हैं, इस ज्वालामुखी पर बैठे हुए हैं और फिर हम पूछने जाते हैं, ध्यान कैसे होगा? किंतु नीचे देखते नहीं कि ज्वालामुखी पर बैठे हैं जिसका लावा पूरे वक्त हिल रहा है, नीचे से भापों के धक्के लग रहे हैं और पूछ रहे हैं कि ध्यान कैसे हो, शांति कैसे मिले, मोक्ष का रास्ता क्या है? पहले इस ज्वालामुखी का निपटारा करिए, पहले इस ज्वालामुखी को जानिये, समझिये जो हम हैं। यह हमारी असलियत है। न भगवान से कोई लेना-देना है, न भगवान से कोई संबंध है, न सत्य से कोई मतलब है। हमारी यह जलती हुई आग, यह हमारा व्यक्तित्व असली सवाल है और इसको हमने कभी देखा नहीं है और ज्वालामुखी इसलिए इकट्ठा हो गया है, बिना देखे दबाये चले गये हैं, वह बहुत इकट्ठा हो गया है। इससे मुक्त होने के लिए एक ही मार्ग है और वह है ज्ञान का, वह है सत्य का। जो सत्य है उसे जान लेना है उसकी परिपूर्णता में।

एक बहुत बड़े बुद्धिमान आदमी हैं। बुद्धिमान आदमी बस किताबों से बुद्धिमान होते हैं। वह मेरे पास आये। बड़ी ख्याति है, हजारों लोग उन्हें मानते हैं। और हजारों लोगों के मानने से जितना अहित किसी व्यक्ति का होता है उतना शायद ही किसी बात से होता होगा। क्यों कि वहां हजार नासमझ मिलकर किसी को भी समझदारी का भाव पैदा करवा देते हैं कि वह समझदार है। अब जरा बुढ़ापे में वह इधर आये हैं, क्योंकि थोड़ा डर पैदा हुआ है कि बहुत कम

समझदारी किताबों की है, बातचीत की है। तो वह मुझसे कहने लगे कि क्या करूं, कैसे शांत होऊं, कैसे ध्यान करूं? तो मैंने उनसे कहा, कि पहले तुम एक काम कर लो। एक महीने के लिए एकांत में चले जाओ और रेचन कर लो, रिलीज हो जाने दो। एक महीने में चिल्लाने का मन हो तो चिल्लायें, नाचने का मन हो तो नाचें, गाली देने का मन हो तो गाली दें। पत्थर फेंकने का मन हो तो पत्थर फेंकें। एक महीने अपने को बिलकुल छोड़ दें। जो होता है, वह होने दें फिर एक महीने बाद आयें। उन्होंने कहा, एक महीने बाद फिर मैं आऊंगा ही नहीं। क्यों? तो उन्होंने कहा, मैं तो पागल हो चुका हूंगा, क्योंकि आप जो कह रहे हैं, वह सब मेरे भीतर है और अगर मैंने जारी किया तो रुकूंगा कैसे? फिर रुकना मुश्किल है, और मैं यह नहीं कर सकता हूं। मैं डरता हूं। मुझे तो शांत होने की तरकीब बताइए। शांत होने की कोई तरकीब नहीं होती। सिर्फ अशांत होने की तरकीबें होती हैं और अशांत होने की तरकीबें समझ में आ जायें तो आदमी शांत हो जाता है। शांत होने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है। अशांत होने की तरकीबों के हम बड़े अभ्यासी हैं और उनका सबका भार इकट्ठा हो गया है। और ज्ञान भी है साथ में, क्योंकि हमको पता है कि क्रोध बुरा है, काम बुरा है। सब हमको पता है। सब अच्छी बातें पता हैं। और अच्छी बातों का पता होना नर्क का रास्ता बनाता है। नहीं, सच में, हमें पता ही नहीं है। इसलिए मैंने कहा, इसका प्रयोग करके देखें। अगर क्रोध हो तो क्रोध की दशा में, लोभ हो तो लोभ की दशा में, काम हो तो काम की दिशा में पूरा प्रयोग करके देखें और पूरा ध्यान करके देखें। सारी स्थितियों को निकाल लें, उघाड़ लें, साफ करें नंगेपन को, बाहर कर लें और देखें। एक बार जिस दिन आप अपने शरीर के, पोर-पोर मन के और अपनी आत्मा के रोयें-रोयें में जो छिपा है, उसकी नग्नता को देख सकेंगे; उस दिन के बाद दुबारा नहीं होगी वह बात। दुबारा नहीं पायी जायगी। जिसने जान लिया है, मुक्त हो गया है। और नहीं मुक्त है तो जानना कि नहीं जाना।

★

आचार्य रजनीश-साहित्य आगामी प्रकाशन

बड़ी पुस्तकें प्रेस के लिए:

- जिन खोजा तिन पाइयां (कुंडलिनी-योग पर प्रवचन)
- मैं मृत्यु सिखाता हूं (ध्यान, समाधि और मृत्यु पर १५ प्रवचन)
- ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया (पंच महाव्रत पर १२ प्रवचन)
- महावीर और मैं (महावीर के जीवन, साधना और शिक्षा पर २४ प्रवचन)
- गीता दर्शन (३ अध्यायों पर ४२ (बयालीस) घंटे प्रवचन): (हिन्दी, गुजराती व अंग्रेजी में निर्माणरत)
- प्रेम है द्वार प्रभु का (१३ प्रवचनों का संकलन)
- श्रीकृष्ण (श्रीकृष्ण के जीवन, साधना, व संदेश पर मनाली शिविर में २७ घंटे हुए प्रवचनों का संकलन)

पुस्तकें प्रेस में:

- संभावनाओं की आहट
- अन्तर्वीणा
- जीवन ही है परमात्मा
- जो घर बारे आपना
- क्या है मार्ग– ज्ञान, भक्ति या कर्म
- समाधि के द्वार पर
- योग : नये आयाम

THE BOMBAY PUBLIC

SCHEDULE VIII

Name of the public trust

Balance Sheet as at

FUNDS & LIABILITIES	Rs.	Rs.
Trust Funds or corpus :—		
Balance as per last Balance Sheet ..	4,260·00	
Adjustment during the year	nil	4,260·00
Other Earmarked Funds :—		
Depreciation Fund	6,458·00	
Sinking Fund	nil	
Reserve Fund	nil	
Any other Fund	96,251·93	1,02,709·93
Loans (Secured or Unsecured) :—		
From Trustees	nil	
From Others	nil	nil
Liabilities :—		
For Expenses	10,219·41	
For Advances	nil	
For rent and other deposits	nil	
For Sundry credit balance	5,669·78	15,889·19

TRUST ACT, 1950

(Vide Rule 17(1))

JIVAN JAGRUTI KENDRA

31st, December 1969 Registered No. E. 4057 (Bom)

ASSETS	Rs.	Rs.
Immovable Properties :— (at cost)		
Balance as per last Balance Sheet ..	nil	
Additions during the year	nil	
Less: Sales during the year	nil	nil
Depreciation up to date	nil	nil
STOCK OF BOOKS ETC. (AS PER INVENTORY TAKEN VALUED & CERTIFIED BY THE TRUSTEES.		65,611·65
Note :		
The market value of the above Investments is Rs.		
Furniture & Fixture :—		
Balance as per last Bal nce Sheet ..		—
Additions during the year Library .. Books		35,722·73
Less: Sales during the year	nil	
Depreciation up to date	nil	
Loans (Secured or Unsecured) :— Good		
doubtful		
Loan Scholarships	nil	nil
Other Loans	nil	

Income & Expenditure Account :—

Balance as per last Balance Sheet ..	1,999·26	
Less: Appropriation, if any	nil	
Add: Surplus as per Income and Expenditure Account	3,511·19	5,510·45
Less: Deficit		
Total Rs. ..		1,28,369·57

As per our report of even date

dated at

8th December 1970.

(Mayra & Khatri)
Chartered Accountants.
Auditors.

Advances :—			
To Sundry debtors			23,787·33
To Employees		nil	
To Contractors		nil	
To Lawyers		nil	
To others		nil	
Income Outstanding :—			
Rent for office		1,111·00	1,111·00
Interest		nil	
Other Income		nil	nil
Cash and Bank Balances :—			
(a) In current Account or Fixed deposits with			
(b) With a Trustee, Mr.			
(c) With a Trustee, Mr			
Central Bank of India.		453·87	
With Bank of India		1020·03	
Bank of Baroda		342·15	
Cash in hand		320·81	2,136·86
Total Rs. ..			1,28,369·57

The above Balance Sheet to the best of my/our belief contains a true account of the Funds and Liabilities and of the Property and Assets of the Trust.

I. N. SHAH

Dated at 8-12-1970 TRUSTEE

THE BOMBAY PUBLIC

SCHEDULE IX

Name of the public Trust

Income and Expenditure Account for the year ending

EXPENDITURE	Rs.	Rs.
To Expenses in respect of properties :—		
Rates, Taxes, cesses	nil	
Repairs and maintenance	nil	
Salaries	nil	
Insurance	nil	
Depreciation (by way of provision or adjustments)	nil	
Other expenses	nil	nil
„ **Establishment Expenses**		14,821·85
„ **Remuneration to Trustee**		nil
„ **Remuneration** (in the case of a math) to the head of the math, including his household expenditure, if any.		nil
„ **Legal Expenses**		1,000·00
(For new trust deed).		
„ **Audit Fees**		nil
„ **Contribution and Fees**		nil
„ **Amount written off**		nil
(a) Bad debts	nil	
(b) Loan Scholarships	nil	
(c) Irrecoverable rents	nil	
(d) Other items	nil	nil

TRUST ACT, 1950

(Vide Rule 17 (1))

JIVAN JAGRUTI KENDRA Registration No. E. 4057 (Bom)

31st, December 1969

INCOME	Rs.	Rs.
By Rent (accrued) —— (realised)		nil
„ Interest (accrued) —— (realised)		
On Securities	nil	
On Loans	nil	
On Bank account	nil	nil
„ **Dividend**		nil
„ **Donations in cash or kind**		nil
„ **Grants**		nil
„ **Income from other sources** (in details as far as possible)		

„	**Miscellaneous Expenses**		nil
„	**Depreciation**		
	On library books.	3156·00	
	On Furniture & Typewriter.	115·00	3,271·00
„	**Amount transferred to Reserve or specific fund**		nil
	Expenditure on objects of the trust ..		
	(a) Religious	nil	
	(b) Educational		4,136·00
	(c) Medical Relief	nil	
	(d) Relief of poverty	nil	
	(e) Other charitable objects	nil	
„	**Surplus carried over to Balance Sheet**		3,511·19
	Total Rs. ..		26,749·04

As per our report of even date

Dated at 8th December, 1970

(Myra & Khatri)
Chartered Accountants.
Auditors.

Membership fees.		75·00	
Publication of Jyotishikha & Books account		26,665·04	26,740·04
„ **Transfer from Reserves**	.. ..		nil
„ **Deficit carried over to Balance Sheet**			nil
Total Rs.	..		26,740 04·

Dated at 8-12-1970

I. N. SHAH
TRUSTEE

ENGLISH BOOKS OF ACHARYA RAJNEESH

I. Translated from Original Hindi:

(1)	Path to Self Realisation	Page 198	Rs. 4·00
(2)	Seeds of Revolutionary Thoughts	,, 232	,, 4·50
(3)	Philosophy of Non-Violence	,, 34	,, 0·80
(4)	Who Am I ?	,, 145	,, 3·00
(5)	Earthen Lamps	,, 247	,, 4·50
(6)	Wings of Love and Random Thoughts	,, 166	,, 3·50
(7)	Towards the Unknown	,, 54	,, 1·50

In Press:

(8) From Sex to Super Consciousness
(9) The Mysteries of Life and Death
(10) Journey Inwards
(11) Beware of Socialism
(12) God-Many Splendoured Love.

II. Original English Booklets:

(13)	Meditation: A New Dimension	,, 36	,, 2·00
(14)	Beyond and Beyond	,, 30	,, 2·00
(15)	Flight of the Alone to the Alone	,, 36	,, 2·50

In Press:

(16) The Pathless Path
(17) The Occult Mysteries of Dreaming
(18) What is Yoga ?
(19) This Insane Society
(20) Freedom From Becoming
(21) The Will to the Wholeness
(22) The Forgotten Language
(23) L.S.D.- A Shortcut to False Samadhi
(24) Yoga: As Spontaneous Happening
(25) The Vital Balance
(26) The Great Challenge
(27) The Open Secret
(28) The Silent Music

III. Criticism on Acharyaji:

(29)	Acharya Rajneesh: A Glimpse by V. N. Vora	,,	24	,, 1·25
(30)	Acharya Rajneesh: The Mystic of Feeling	,,	234	,, 20·00

=======

Available from:

Jeevan Jagruti Kendra,
53, Empire Building,
146, Dr. D. N. Road, Bombay-1.

Statement about ownership and other particulars about Newspaper 'JYOTI SHIKHA' to be published in the First issue every year after last day of February.

FORM IV
(See Rule 8)

1	Place of Publication	Bombay
2	Periodicity of its Publication	Quarterly
3	Printer's Name Nationality Address	Ishwarlal N. Shah Indian Jeevan Jagruti Kendra, Empire Bldg., Room No. 53, Dr. D. N. Road, Fort, Bombay-1
4.	Publisher's Name Nationality Address	Ishwarlal N. Shah Indian Jeevan Jagruti Kendra, Empire Bldg., Room No. 53, Dr. D. N. Road, Fort, Bombay-1
5.	Editors Name Nationality Address	Mahipal Indian, Vijay Mahal, D Road, Churchgate, Bombay-20. Prof. Arvind Indian Kamla Nehru Nagar, Jabalpur, (M.P.)
6.	Name and address of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital.	Jeevan Jagruti Kendra, Empire Bldg., Room No. 53, Dr. D. N. Road, Fort, Bombay-1

I, Ishwarlal N. Shah hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Ishwarlal N. Shah,
Signature of Publisher

Date: 1-3-1971

मुद्रक प्रकाशक : ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन. रोड फोर्ट, बम्बई–१ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १।

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई द्वारा प्रकाशित आचार्यश्री रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
प्रेम के फूल	५–००
प्रभु की पगडंडियां	४–००
क्रांतिबीज	३–००
नई दिशा नई बात	०–३०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–५०
सत्य की पहली किरण	६–००
शांति की खोज	२–००
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१–००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–७५
बिखरे फूल	०–३५
अज्ञात की ओर	२–००
नये संकेत	२–००
संभोग से समाधि की ओर	३–५०
क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार ?	०–३०
संस्कृति के निर्माण में सहयोग	०–३०
अंतर्यात्रा	३–५०
अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००
सत्य का सागर शून्य की नाव	३–००
आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण,संसिद्धि	७–५०
युक्रांद (मासिक)	१२–००

प्राप्ति स्थल:

(१) जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड, बंबई :१

(२) मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७

(३) स्वदेशी वस्तु भंडार, जाम-नगर

(४) आर. अंबानी एंड कं., अपोजिट : जिमखाना, राजकोट

(५) चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रायपुरा, बड़ौदा

(६) मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा, वाराणसी

(७) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना

(८) भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जालंधर

(९) सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद

(१०) बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद

(११) सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर–२

(१२) हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

(१३) सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर

(१४) युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर

(१५) श्री आर. के. पुंगलिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२

ज्योति शिखा

२०

मार्च १९७१

जीवन जागृति केन्द्र